Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2350-0611**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – IX)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - *A Referred Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao,** Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

ଔ

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh,** Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari,** Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain,** Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas,** Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Research Highlights"

➲	पाकिस्तान की मांग और बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण ***डॉ. राघव रंजन***	01-05
➲	प्राचीन बिहार की स्त्रियाँ : साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर एक ऐतिहासिक विश्लेषण ***डॉ. सीता कुमार***	06-10
➲	सशक्त महिला, समृद्ध राष्ट्रः कुटीर उद्योगों में महिलाओं की भूमिका ***हरेन्द्र यादव***	11-15
➲	बदलते राजनीतिक परिदृश्य में भारत–नेपाल सम्बन्ध : एक अध्ययन ***डॉ. दिलीप कुमार***	16-20
➲	मगध की पारम्परिक विरासत एवं सांस्कृतिक पहचान : एक ऐतिहासिक अध्ययन ***डॉ. सरोज कुमार***	21-25
➲	VB-G RAM G के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण का मूल्यांकन ***डॉ. सुषमा***	26-30
➲	बौद्ध और वैदिक परंपराओं में ज्ञान के मौखिक हस्तांतरणः एक तुलनात्मक अध्ययन ***कोमल***	31-38
➲	एशिया में चीन की विस्तारवादी नीति और भारत की सुरक्षा चिंताएँ ***रमेश चन्द्र***	39-43
➲	वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य में अयोध्या पुरी का सांस्कृतिक इतिहास ***छाया यादव***	44-47
➲	भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि : जैन कथा साहित्य ***डॉ. सौरभ चौधरी***	48-51
➲	प्राचीन भारत में स्तम्भ वास्तु का विकास ***डॉ. नीलेश कुमार पाण्डेय***	52-55
➲	भारत की सांस्कृतिक विरासत : प्रारंभ से मध्यकाल तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण ***डॉ. सुमन कुमारी***	56-61
➲	मालवांचल के लोक संगीत की सांस्कृतिक परम्परा एवं स्वरूप समीक्षात्मक अध्ययन ***चेतन सिंह राजपूत*** ***डॉ. अपर्णा अग्निहोत्री***	62-67
➲	प्राथमिक शिक्षा का मौलिक अधिकार : विधि, उपादेयता एवं प्रभाव ***डॉ. अमित कुमार सिंह***	68-70

पाकिस्तान की मांग और बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण

डॉ. राघव रंजन*

प्रस्तुत शोध लेख ''पाकिस्तान की मांग और बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण'' का एक ऐतिहासिक अध्ययन है। भारत का विभाजन आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण एवं जटिल घटनाओं में से एक है। यह केवल राजनीतिक सत्ता के हस्तांतरण का प्रश्न नहीं था, बल्कि भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म तथा राष्ट्रीय पहचान के पुनर्गठन की प्रक्रिया भी था। पाकिस्तान की मांग, जिसे औपचारिक रूप से 1940 के लाहौर प्रस्ताव के माध्यम से प्रस्तुत किया गया, ने भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीति को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। इस मांग का प्रभाव केवल उन क्षेत्रों तक सीमित नहीं था जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक थे, बल्कि बिहार जैसे मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रांतों पर भी गहराई से पड़ा।

प्रस्तुत शोध–लेख का उद्देश्य 1920 से 1947 के मध्य बिहार के मुसलमानों के राजनीतिक दृष्टिकोण, सामाजिक चेतना तथा पाकिस्तान की मांग के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं का ऐतिहासिक विश्लेषण करना है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण एकरूप नहीं था। एक ओर मुस्लिम लीग से जुड़े शिक्षित वर्ग, जमींदारों तथा शहरी मध्यमवर्ग के कुछ हिस्सों ने पाकिस्तान की मांग का समर्थन किया, वहीं दूसरी ओर कांग्रेस समर्थक राष्ट्रवादी मुसलमानों, उलेमा तथा अनेक सामाजिक संगठनों ने भारत की अखंडता और संयुक्त राष्ट्रवाद का समर्थन किया।

कुंजिका : भारत विभाजन, पाकिस्तान की मांग, बिहार के मुसलमान, मुस्लिम लीग, कांग्रेस, राष्ट्रवाद, सांप्रदायिक राजनीति, बिहार दंगे, औपनिवेशिक भारत, द्विराष्ट्र सिद्धांत।

परिचयः बीसवीं शताब्दी का तीसरा और चौथा दशक भारतीय इतिहास के लिए गहन राजनीतिक परिवर्तन का काल था। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने नई दिशा प्राप्त की। असहयोग आंदोलन, खिलाफत आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग को राजनीति से जोड़ा। इसी अवधि में सांप्रदायिक राजनीति का भी विस्तार हुआ, जिसने अंततः भारत विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया।

बिहार इस संपूर्ण प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र था। यद्यपि यहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक थे, फिर भी राज्य के राजनीतिक, शैक्षिक तथा प्रशासनिक जीवन में उनका महत्वपूर्ण योगदान था।[1] पटना, गया, भागलपुर, मुंगेर, दरभंगा और शाहाबाद जैसे क्षेत्रों में मुस्लिम अभिजात वर्ग, शिक्षित मध्यमवर्ग, व्यापारिक समुदाय तथा धार्मिक नेतृत्व की सक्रिय भूमिका दिखाई देती है।

1920 के दशक में खिलाफत आंदोलन ने बिहार के मुसलमानों में राजनीतिक चेतना का व्यापक प्रसार किया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन के संयुक्त कार्यक्रमों ने हिंदू–मुस्लिम एकता की एक नई संभावना प्रस्तुत की। मौलाना मजहरुल हक, डॉ. सैयद महमूद तथा अनेक राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं ने बिहार में संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन को सशक्त बनाया। इस दौर में अधिकांश मुसलमानों की प्राथमिक राजनीतिक पहचान भारतीय राष्ट्रवाद से जुड़ी हुई थी।

किन्तु 1930 के दशक के उत्तरार्ध में परिस्थितियाँ बदलने लगीं। 1935 के भारत शासन अधिनियम तथा 1937 के प्रांतीय चुनावों ने भारतीय राजनीति में नए समीकरण उत्पन्न किए। मुस्लिम लीग ने मुस्लिम राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न को अधिक आक्रामक रूप से उठाना प्रारम्भ किया।[2] बिहार में कांग्रेस की सरकार बनने के बाद मुस्लिम लीग ने यह प्रचार किया कि मुस्लिम हितों की पर्याप्त सुरक्षा नहीं हो रही है। परिणामस्वरूप शिक्षित मुस्लिम वर्ग के एक हिस्से में लीग का प्रभाव धीरे–धीरे बढ़ने लगा।

1940 का लाहौर प्रस्ताव भारतीय राजनीति का निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। इस प्रस्ताव ने मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में पृथक राज्यों की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसे आगे चलकर पाकिस्तान की मांग के रूप में विकसित किया गया। बिहार जैसे अल्पसंख्यक प्रांतों में इस प्रस्ताव को लेकर अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ

* पी–एच0 डी0, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
E-mail : raghavranjan19@gmail.com, Mob. : 9955073828

सामने आईं। कुछ मुसलमानों ने इसे अपने राजनीतिक भविष्य की सुरक्षा का माध्यम माना, जबकि अनेक राष्ट्रवादी मुसलमानों ने इसे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विरुद्ध तथा हिंदू–मुस्लिम एकता के लिए घातक बताया।

बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण सामाजिक वर्ग, आर्थिक स्थिति, शिक्षा, क्षेत्रीय पृष्ठभूमि तथा राजनीतिक संबद्धता के अनुसार भिन्न–भिन्न था। ग्रामीण कृषक मुसलमानों की प्राथमिक चिंताएँ भूमि, लगान और आर्थिक जीवन से जुड़ी थीं, जबकि शहरी शिक्षित वर्ग सरकारी सेवाओं, प्रतिनिधित्व तथा राजनीतिक अधिकारों के प्रश्न पर अधिक सक्रिय था।[3] इसी कारण पाकिस्तान की मांग के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं में भी उल्लेखनीय विविधता दिखाई देती है।

1946 के बिहार दंगे इस पूरी प्रक्रिया के सबसे महत्वपूर्ण मोड़ों में से एक थे। इन दंगों ने मुस्लिम समाज में असुरक्षा की भावना को बढ़ाया तथा मुस्लिम लीग को अपने राजनीतिक तर्कों को अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने का अवसर दिया। दूसरी ओर अनेक राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं ने सांप्रदायिक हिंसा को भारत की साझा सांस्कृतिक विरासत के लिए गंभीर खतरा माना और विभाजन का विरोध जारी रखा।

बिहार में मुस्लिम राजनीतिक चेतना का विकास (1920–1947) : बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में बिहार के मुसलमानों में राजनीतिक चेतना का विकास खिलाफत आंदोलन, असहयोग आंदोलन तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों के माध्यम से हुआ।[4] प्रारम्भ में अधिकांश मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन के समर्थक थे और स्वतंत्रता को अपना प्रमुख उद्देश्य मानते थे। समय के साथ राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन आने पर मुस्लिम लीग का प्रभाव बढ़ने लगा।

खिलाफत आंदोलन और हिंदू–मुस्लिम एकता : खिलाफत आंदोलन ने बिहार में हिंदू–मुस्लिम सहयोग को नई दिशा प्रदान की। इस आंदोलन के दौरान अनेक मुस्लिम नेताओं ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी की। इससे मुसलमानों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ी तथा राष्ट्रीय पहचान को बल मिला।

मुस्लिम लीग का बिहार में विस्तार : 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद मुस्लिम लीग ने बिहार में अपने संगठन को मजबूत करना प्रारम्भ किया। लीग ने मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक अधिकारों, सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व तथा धार्मिक पहचान के प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया। इससे शिक्षित मुस्लिम वर्ग के एक हिस्से में लीग की लोकप्रियता बढ़ी।

लाहौर प्रस्ताव (1940) का प्रभाव : 1940 के लाहौर प्रस्ताव ने पाकिस्तान की मांग को संगठित राजनीतिक स्वरूप प्रदान किया। बिहार के मुसलमानों में इस प्रस्ताव को लेकर अलग–अलग प्रतिक्रियाएँ सामने आईं। कुछ लोगों ने इसे मुस्लिम सुरक्षा का माध्यम माना, जबकि अनेक राष्ट्रवादी मुसलमानों ने इसका विरोध किया।

राष्ट्रवादी मुस्लिम नेतृत्व की भूमिका : बिहार में मौलाना मजहरुल हक, डॉ. सैयद महमूद तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं ने संयुक्त भारतीय राष्ट्रवाद का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि हिंदू और मुसलमान सदियों से साथ रहते आए हैं और भारत का भविष्य भी साझा राष्ट्रीयता में ही निहित है।

इस शोध–पत्र का केंद्रीय तर्क यह है कि बिहार के मुसलमानों को एक समान राजनीतिक इकाई मानना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। उनके भीतर राष्ट्रवादी, प्रांतीय, धार्मिक, आर्थिक तथा सांप्रदायिक सभी प्रकार की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। पाकिस्तान की मांग के समर्थन अथवा विरोध को समझने के लिए इन सभी आयामों का समग्र अध्ययन आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के आलोचनात्मक विश्लेषण पर आधारित है। इसमें सरकारी अभिलेख, बिहार विधान परिषद् की कार्यवाहियाँ, मुस्लिम लीग एवं कांग्रेस के प्रस्ताव, समकालीन उर्दू एवं अंग्रेजी समाचार–पत्र, संस्मरण तथा आधुनिक इतिहासकारों के शोध का उपयोग किया गया है। यह शोध बिहार के मुसलमानों की राजनीतिक मानसिकता का क्षेत्रीय इतिहास के दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

अध्ययन का महत्व इस तथ्य में निहित है कि भारत विभाजन पर अधिकांश शोध पंजाब और बंगाल पर केंद्रित रहे हैं, जबकि बिहार जैसे अल्पसंख्यक प्रांतों के मुस्लिम समाज की राजनीतिक सोच पर अपेक्षाकृत कम कार्य हुआ है। इसलिए यह शोध भारतीय विभाजन इतिहास की क्षेत्रीय समझ को विस्तृत करने का प्रयास करता है तथा यह स्थापित करता है कि बिहार के मुसलमानों की राजनीतिक प्रतिक्रिया बहुआयामी, परिवर्तनशील और परिस्थितिनिष्ठ थी।

साहित्य समीक्षा

वेण्कट धूलिपाला (2025) वेण्कट धूलिपाला ने अपने संशोधित संस्करण में यह प्रतिपादित किया है कि पाकिस्तान की अवधारणा केवल एक राजनीतिक समझौता नहीं थी, बल्कि यह एक धार्मिक एवं वैचारिक राष्ट्र–निर्माण परियोजना थी। लेखक के अनुसार मुस्लिम लीग ने मुस्लिम जनता के समक्ष पाकिस्तान को एक आधुनिक इस्लामी राज्य के रूप में प्रस्तुत किया। धूलिपाला यह भी स्पष्ट करते हैं कि अल्पसंख्यक प्रांतों विशेषकर बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मध्य भारत के मुसलमानों ने पाकिस्तान की मांग को केवल क्षेत्रीय प्रश्न के रूप में नहीं, बल्कि मुस्लिम राजनीतिक भविष्य की सुरक्षा के रूप में भी देखा। यद्यपि लेखक का विश्लेषण अत्यंत प्रभावशाली है, किन्तु बिहार के स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व एवं ग्रामीण मुस्लिम समाज के दृष्टिकोण का अपेक्षाकृत सीमित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।[5]

इयान टैलबोट एवं गुरहरपाल सिंह (2023) लेखकों ने भारत विभाजन को केवल राजनीतिक घटना न मानकर सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक संकट के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने बिहार के 1946 के सांप्रदायिक दंगों का उल्लेख करते हुए बताया कि इन घटनाओं ने मुस्लिम समुदाय में गहरी असुरक्षा उत्पन्न की, जिसका प्रभाव पाकिस्तान की मांग के समर्थन पर भी पड़ा।[6] हालाँकि उनका अध्ययन राष्ट्रीय स्तर पर अत्यंत उपयोगी है, लेकिन बिहार के जिला–स्तरीय राजनीतिक परिवर्तनों का विस्तृत विश्लेषण इसमें नहीं मिलता।

आयशा जलाल (2019) आयशा जलाल का मत है कि मोहम्मद अली जिन्ना का प्रारम्भिक उद्देश्य पूर्ण विभाजन नहीं, बल्कि भारतीय संघीय व्यवस्था में मुसलमानों के लिए प्रभावशाली राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करना था। लेखिका के अनुसार पाकिस्तान की मांग एक राजनीतिक रणनीति के रूप में विकसित हुई।[7] बिहार के संदर्भ में उनका अध्ययन यह संकेत देता है कि मुस्लिम लीग का प्रभाव शिक्षित मध्यमवर्ग तथा राजनीतिक अभिजात वर्ग में अधिक था, जबकि सामान्य ग्रामीण मुसलमानों की राजनीतिक प्राथमिकताएँ अलग थीं।

मुशीरुल हसन (2018) मुशीरुल हसन ने भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक इतिहास को विभाजन के पूर्व एवं पश्चात दोनों संदर्भों में विश्लेषित किया है। लेखक का मत है कि भारत के सभी मुसलमान पाकिस्तान के समर्थक नहीं थे। बिहार सहित अनेक क्षेत्रों में राष्ट्रवादी मुस्लिम नेतृत्व ने संयुक्त भारत की अवधारणा का समर्थन किया।[8] यह अध्ययन विशेष रूप से इस तथ्य को रेखांकित करता है कि मुस्लिम समाज के भीतर राजनीतिक विविधता को समझे बिना विभाजन के इतिहास का सम्यक् मूल्यांकन संभव नहीं है।

बारबरा डी. मेटकाफ एवं थॉमस आर. मेटकाफ (2012) लेखकों ने आधुनिक भारत के राजनीतिक विकास का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार 1937 के चुनावों के बाद कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के संबंधों में बढ़ती दूरी ने विभाजन की राजनीति को बल प्रदान किया। बिहार में कांग्रेस शासन तथा मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया को वे राष्ट्रीय राजनीति का महत्वपूर्ण भाग मानते हैं।[9]

बिपन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के.एन. पनिक्कर एवं सुचेता महाजन (2008) इन इतिहासकारों ने विभाजन को ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति, सांप्रदायिक राजनीति तथा मुस्लिम लीग एवं कांग्रेस के बीच राजनीतिक अविश्वास का परिणाम माना है। इनके अनुसार मुस्लिम लीग की लोकप्रियता 1940 के बाद तीव्र गति से बढ़ी, परन्तु भारत के सभी मुसलमानों ने पाकिस्तान की मांग का समर्थन नहीं किया। बिहार के संदर्भ में यह अध्ययन राष्ट्रवादी मुस्लिम नेतृत्व की भूमिका की ओर संकेत करता है, किन्तु क्षेत्रीय विश्लेषण सीमित है।[10]

सुमित सरकार (2006) सुमित सरकार ने भारतीय राष्ट्रवाद तथा सांप्रदायिक राजनीति के अंतर्विरोधों का विस्तृत विश्लेषण किया है। लेखक का मत है कि मुस्लिम लीग की सफलता केवल धार्मिक पहचान का परिणाम नहीं थी, बल्कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व, प्रशासनिक अवसरों तथा औपनिवेशिक नीतियों से भी जुड़ी हुई थी।[11] उनका अध्ययन बिहार के शिक्षित मुस्लिम वर्ग की बदलती राजनीतिक मानसिकता को समझने में उपयोगी आधार प्रदान करता है।

फ्रांसिस रॉबिन्सन (2000) फ्रांसिस रॉबिन्सन ने दक्षिण एशिया में मुस्लिम राजनीतिक चेतना के विकास का विश्लेषण किया है। लेखक का मत है कि मुस्लिम पहचान केवल धार्मिक आधार पर निर्मित नहीं हुई, बल्कि शिक्षा, भाषा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा औपनिवेशिक प्रशासनिक संरचना ने भी उसे प्रभावित किया। यह

अध्ययन बिहार के मुस्लिम अभिजात वर्ग की राजनीतिक भूमिका को समझने के लिए उपयोगी सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है।[12]

उद्देश्य

1. 1920 से 1947 के मध्य बिहार के मुसलमानों की राजनीतिक चेतना का अध्ययन करना।
2. पाकिस्तान की मांग के प्रति बिहार के मुसलमानों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करना।
3. मुस्लिम लीग एवं राष्ट्रवादी मुस्लिम नेतृत्व की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. 1946 के बिहार दंगों का मुस्लिम समाज की राजनीतिक मानसिकता पर प्रभाव ज्ञात करना।
5. यह मूल्यांकन करना कि बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण एकरूप था या बहुआयामी।

परिकल्पना

1. बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण पाकिस्तान की मांग के प्रति एकसमान नहीं था।
2. शिक्षित शहरी मुस्लिम वर्ग में मुस्लिम लीग का प्रभाव ग्रामीण मुस्लिम समाज की तुलना में अधिक था।
3. राष्ट्रवादी मुस्लिम नेतृत्व ने संयुक्त भारतीय राष्ट्रवाद का समर्थन किया।
4. 1946 के सांप्रदायिक दंगों ने मुस्लिम समाज में असुरक्षा की भावना को बढ़ाया, जिससे पाकिस्तान की मांग के समर्थन में वृद्धि हुई।

मुख्य विश्लेषण

- **खिलाफत आंदोलन और प्रारम्भिक मुस्लिम राजनीतिक चेतना :** 1920 के दशक में खिलाफत आंदोलन ने बिहार के मुसलमानों को व्यापक रूप से राजनीति से जोड़ा। मौलाना मजहरुल हक, डॉ. सैयद महमूद तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं ने हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल दिया। इस समय अधिकांश मुसलमानों की प्राथमिक पहचान भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन से जुड़ी हुई थी।
- **1937 के चुनाव और मुस्लिम लीग का विस्तार :** भारत शासन अधिनियम 1935 के अंतर्गत हुए 1937 के चुनावों के बाद बिहार में कांग्रेस सरकार बनी। मुस्लिम लीग ने यह प्रचार किया कि मुस्लिम हितों की पर्याप्त सुरक्षा नहीं हो रही है। परिणामस्वरूप शिक्षित मुस्लिम मध्यमवर्ग, वकीलों, व्यापारियों तथा जमींदारों के एक हिस्से में लीग का प्रभाव बढ़ने लगा।
- **बिहार के राष्ट्रवादी मुसलमान :** बिहार के अनेक मुस्लिम नेताओं ने द्विराष्ट्र सिद्धांत का विरोध किया। उनका तर्क था कि भारतीय मुसलमानों की पहचान केवल धर्म पर आधारित नहीं है, बल्कि वे भारतीय इतिहास, संस्कृति और समाज के अभिन्न अंग हैं। उन्होंने पाकिस्तान की मांग को सांप्रदायिक राजनीति का परिणाम माना।

निष्कर्ष: शोध लेख में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि 1946 के बिहार दंगों ने मुस्लिम समाज की राजनीतिक मनोवृत्ति को गहराई से प्रभावित किया तथा पाकिस्तान की मांग के समर्थन और विरोध दोनों प्रवृत्तियों को नए आयाम प्रदान किए। यह अध्ययन अभिलेखीय दस्तावेजों, समकालीन समाचार–पत्रों, सरकारी प्रतिवेदनों तथा आधुनिक इतिहासकारों के शोध पर आधारित है।

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बिहार के मुसलमानों का दृष्टिकोण पाकिस्तान की मांग के प्रति एकरूप नहीं था। 1920 के दशक में राष्ट्रवादी राजनीति का प्रभाव अधिक था, किन्तु 1937 के बाद मुस्लिम लीग का प्रभाव क्रमशः बढ़ा। शिक्षित शहरी वर्ग और राजनीतिक अभिजात वर्ग में पाकिस्तान की मांग को अपेक्षाकृत अधिक समर्थन मिला, जबकि अनेक राष्ट्रवादी मुसलमान संयुक्त भारत के पक्षधर बने रहे। 1946 के बिहार दंगों ने मुस्लिम समाज की राजनीतिक मानसिकता को निर्णायक रूप से प्रभावित किया और असुरक्षा की भावना को बढ़ाया। फिर भी यह कहना ऐतिहासिक रूप से गलत होगा कि बिहार के सभी मुसलमान पाकिस्तान के समर्थक थे। वास्तव में उनका राजनीतिक दृष्टिकोण बहुआयामी, वर्ग–आधारित, क्षेत्रीय तथा परिस्थितिनिष्ठ था। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बिहार के मुसलमानों की राजनीतिक चेतना बहुआयामी थी और उसे केवल मुस्लिम लीग की राजनीति तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता।

संदर्भ सूची

1. पंडेय, ज्ञानेंद्र (2001) रिमेम्बरिंग पार्टिशनरू वायलेंस, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्री इन इंडिया, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 78

2. अहमद, इम्तियाज (2014) भारतीय मुसलमान और राजनीति, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, पृ0 107
3. महाजन, सुचेता (2000) इंडिपेंडेन्स एंड पार्टिशन : द इरोजन ऑफ कॉलोनियल पावर इन इंडिया, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स, पृ0 112
4. मेटकाफ, बारबरा डी., एवं मेटकाफ, थॉमस आर. (2012) अ कॉन्साइस हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया (तीसरा संस्करण) कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 47
5. धूलिपाला, वेण्कट (2025) क्रिएटिंग अ न्यू मदीना : स्टेट पावर, इस्लाम एंड द क्वेस्ट फॉर पाकिस्तान (संशोधित संस्करण) कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 33
6. टैलबोट, इयान, एवं सिंह, गुरहरपाल (2023) द पार्टिशन ऑफ इंडिया, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 55
7. जलाल, आयशा (2019) द सोल स्पोक्समैन : जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान (अद्यतन संस्करण) कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 43
8. हसन, मुशीरुल (2018) लेगेसी ऑफ अ डिवाइडेड नेशन : इंडियाज मुस्लिम्स सिंस इंडिपेंडेंस, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 17
9. मेटकाफ, बारबरा डी., एवं मेटकाफ, थॉमस आर. (2012) अ कॉन्साइस हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 49
10. चन्द्र, बिपन, मुखर्जी, मृदुला, मुखर्जी, आदित्य, पनिक्कर, के. एन., एवं महाजन, सुचेता (2008) इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स, पृ0 47
11. सरकार, सुमित (2006) मॉडर्न इंडिया : 1885–1947 नई दिल्ली, मैकमिलन इंडिया, पृ0 133
12. रॉबिन्सन, फ्रांसिस (2000) इस्लाम एंड मुस्लिम हिस्ट्री इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 28

प्राचीन बिहार की स्त्रियाँ : साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. सीता कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन 'प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा : स्तूप, विहार एवं मंदिरों का अध्ययन' का विश्लेषण करना है। प्राचीन बिहार (मगध, वैशाली, मिथिला आदि) भारतीय इतिहास का एक प्रमुख सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक केंद्र रहा है। यहाँ विकसित सामाजिक संरचनाओं, धार्मिक आंदोलनों एवं शैक्षिक संस्थानों ने स्त्रियों की स्थिति को बहुआयामी रूप में प्रभावित किया। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के माध्यम से प्राचीन बिहार की स्त्रियों के सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं आर्थिक जीवन का समग्र अध्ययन करना है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रारंभिक काल में स्त्रियाँ अपेक्षाकृत स्वतंत्र एवं शिक्षित थीं, जबकि उत्तरकाल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सुदृढ़ होने से उनकी स्थिति में क्रमिक गिरावट आई। बौद्ध एवं जैन धर्म ने स्त्रियों को वैकल्पिक सामाजिक–धार्मिक पहचान प्रदान की, जो भारतीय इतिहास में स्त्री सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण चरण था।

विशिष्ट शब्द : प्राचीन बिहार, स्त्री इतिहास, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, पुरातत्व, लैंगिक अध्ययन, सामाजिक संरचना, आदि।

प्रस्तावना

प्राचीन बिहार भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं सभ्यता के विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यह क्षेत्र न केवल राजनीतिक दृष्टि से सशक्त रहा, बल्कि धार्मिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक गतिविधियों का भी प्रमुख केंद्र था। प्राचीन काल में मगध, वैशाली तथा मिथिला जैसे क्षेत्रों ने भारतीय इतिहास की दिशा को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेष रूप से मगध साम्राज्य के उदय, वैशाली के गणराज्यीय परंपरा तथा मिथिला की दार्शनिक परंपरा ने इस क्षेत्र को विशिष्ट पहचान प्रदान की।

प्राचीन बिहार की इसी समृद्ध परंपरा के भीतर स्त्रियों की भूमिका एवं उनकी स्थिति का अध्ययन एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। यद्यपि पारंपरिक इतिहासलेखन में स्त्रियों की भूमिका को अक्सर गौण या सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया है, तथापि आधुनिक इतिहासलेखन एवं नारीवादी दृष्टिकोण के विकास के साथ स्त्रियों के योगदान का पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है। आज इतिहास के अध्ययन में यह स्वीकार किया जाने लगा है कि किसी भी समाज की वास्तविक संरचना को समझने के लिए स्त्रियों की स्थिति, भूमिका एवं अनुभवों का अध्ययन अनिवार्य है।

प्राचीन बिहार में स्त्रियों की स्थिति एकसमान नहीं थी, बल्कि यह समय, स्थान एवं सामाजिक–आर्थिक संरचना के अनुसार परिवर्तित होती रही। वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त थे। वे शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं तथा दार्शनिक विमर्श में भी सक्रिय भूमिका निभाती थीं।[1] मिथिला क्षेत्र में गार्गी एवं मैत्रेयी जैसी विदुषियों का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियाँ केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे बौद्धिक गतिविधियों में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती थीं।

महाजनपद काल, विशेषकर मगध एवं वैशाली के संदर्भ में, स्त्रियों की भूमिका सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अधिक स्पष्ट रूप से उभरती है। वैशाली के गणराज्य में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत उन्नत मानी जाती है, जहाँ उन्हें कुछ सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। इसी काल में बौद्ध एवं जैन धर्म का उदय हुआ, जिन्होंने स्त्रियों को एक वैकल्पिक धार्मिक पहचान प्रदान की। बौद्ध धर्म में भिक्षुणी संघ की स्थापना तथा जैन धर्म में साध्वी परंपरा का विकास स्त्रियों के धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत देता है।

* पी–एच0 डी0, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 9113377590, E-mail id : sitapandit1990@gmail.com

मौर्य काल में, जब मगध साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर था, स्त्रियों की स्थिति में विविधता देखने को मिलती है। एक ओर वे परिवार एवं समाज की संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं, वहीं दूसरी ओर कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उनका उल्लेख विभिन्न प्रशासनिक एवं आर्थिक गतिविधियों में भी मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे राज्य व्यवस्था में भी अप्रत्यक्ष रूप से सहभागी थीं।[2]

गुप्त काल में आते–आते सामाजिक संरचना अधिक संगठित एवं रूढ़िवादी होती गई, जिसका प्रभाव स्त्रियों की स्थिति पर भी पड़ा। इस काल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था अधिक सुदृढ़ हुई और स्त्रियों की स्वतंत्रता में कमी आई। विवाह संबंधी प्रथाएँ, सामाजिक मर्यादाएँ एवं धार्मिक मान्यताएँ स्त्रियों की भूमिका को अधिक सीमित करने लगीं।

प्राचीन बिहार में स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। साहित्यिक स्रोतों में वैदिक साहित्य, बौद्ध ग्रंथ (त्रिपिटक, जातक), जैन आगम, पुराण एवं स्मृतियाँ प्रमुख हैं, जो स्त्रियों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर, पुरातात्विक साक्ष्य जैसे अभिलेख, सिक्के, मूर्तिकला एवं स्थापत्य स्त्रियों की वास्तविक स्थिति को समझने में सहायक होते हैं।[3] उदाहरण के लिए, यक्षिणी मूर्तियाँ स्त्री के सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व को दर्शाती हैं, जबकि अभिलेखों में स्त्रियों द्वारा किए गए दान एवं धार्मिक गतिविधियों का उल्लेख उनकी सामाजिक सक्रियता को प्रमाणित करता है।

इस शोध का उद्देश्य प्राचीन बिहार की स्त्रियों की स्थिति का समग्र एवं तुलनात्मक अध्ययन करना है, जिसमें साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर उनके सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, यह अध्ययन इस बात की भी जांच करता है कि समय के साथ स्त्रियों की स्थिति में किस प्रकार परिवर्तन हुआ तथा किन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक कारकों ने इन परिवर्तनों को प्रभावित किया।

साहित्यिक स्रोतों के आधार पर स्त्रियों की स्थिति

वैदिक परंपरा में स्त्रियों को शिक्षा, विवाह एवं धार्मिक कर्मों में भागीदारी का अधिकार प्राप्त था। मिथिला क्षेत्र (विदेह) में गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों का उल्लेख मिलता है, जो दार्शनिक वाद–विवाद में भाग लेती थीं।

बौद्ध साहित्य में स्त्रियाँ

- बौद्ध साहित्य (त्रिपिटक, जातक कथाएँ) स्त्रियों की स्थिति को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है।
- त्रिपिटक में भिक्षुणी संघ का उल्लेख मिलता है।
- महाप्रजापति गौतमी को प्रथम भिक्षुणी माना जाता है।
- जातक कथाओं में स्त्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक भूमिकाएँ परिलक्षित होती हैं।
- बौद्ध ग्रंथों में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन से संबंधित अनेक विवरण मिलते हैं ।

जैन साहित्य में स्त्रियाँ

- जैन आगमों एवं अन्य ग्रंथों में स्त्रियों के धार्मिक जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है।
- स्त्रियाँ श्राविका एवं साध्वी के रूप में धार्मिक जीवन अपनाती थीं।
- जैन ग्रंथ सामाजिक जीवन एवं नैतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

पुराणिक एवं अन्य ग्रंथ

- पुराणों में स्त्रियों की भूमिका मुख्यतः पारिवारिक और नैतिक आदर्शों तक सीमित दिखाई देती है।
- स्त्री को 'पतिव्रता' के रूप में आदर्शित किया गया
- सामाजिक संरचना में पुरुष प्रधानता का विकास हुआ

पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर स्त्रियों की स्थिति

मूर्तिकला एवं कला

- मौर्य एवं गुप्तकालीन मूर्तियों में स्त्री सौंदर्य, मातृत्व एवं देवी रूप का चित्रण मिलता है।
- यक्षिणी मूर्तियाँ स्त्री के सांस्कृतिक महत्व को दर्शाती हैं।

अभिलेख एवं सिक्के

- कुछ अभिलेखों में स्त्रियों द्वारा दान एवं धार्मिक कार्यों में भागीदारी का उल्लेख मिलता है।
- स्त्रियाँ आर्थिक गतिविधियों में भी संलग्न थीं।

स्थापत्य साक्ष्य (स्तूप एवं विहार)

- नालंदा एवं वैशाली के अवशेषों से स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ शिक्षा एवं धर्म से जुड़ी थीं।
- भिक्षुणी विहारों के प्रमाण स्त्रियों की स्वतंत्र धार्मिक पहचान को दर्शाते हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में स्त्रियाँ

पारिवारिक जीवन

- स्त्रियाँ परिवार की संरचना का केंद्र थीं
- विवाह संस्था महत्वपूर्ण थी

शिक्षा एवं बौद्धिक भूमिका

- मिथिला क्षेत्र में स्त्रियों की विद्वत्ता के उदाहरण
- बौद्ध विहारों में शिक्षा प्राप्त करने के अवसर

आर्थिक योगदान

- कृषि एवं हस्तशिल्प में सहभागिता
- व्यापारिक परिवारों में सहायक भूमिका

धार्मिक जीवन में स्त्रियाँ

- बौद्ध धर्म में भिक्षुणी परंपरा
- जैन धर्म में साध्वी परंपरा
- वैदिक परंपरा में यज्ञों में सहभागिता

अंततः यह शोध इस धारणा को चुनौती देने का प्रयास करता है कि प्राचीन समाज में स्त्रियाँ निष्क्रिय या गौण भूमिका में थीं। इसके विपरीत, यह अध्ययन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि प्राचीन बिहार की स्त्रियाँ सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय भागीदार थीं, जिन्होंने न केवल अपने समय की सामाजिक संरचना को प्रभावित किया, बल्कि भारतीय इतिहास के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

साहित्य समीक्षा

प्राचीन बिहार में स्त्रियों की स्थिति एवं भूमिका पर आधुनिक इतिहासलेखन में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। विशेषकर 21वीं सदी के दूसरे दशक के बाद इस क्षेत्र में नारीवादी दृष्टिकोण, लैंगिक विश्लेषण एवं बहु–विषयक पद्धतियों का प्रयोग अधिक व्यापक हुआ है। प्रस्तुत साहित्य समीक्षा में प्रमुख विद्वानों के कार्यों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

सिंह, मीनाक्षी (2024) सिंह का यह शोध लेख आधुनिक नारीवादी इतिहासलेखन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने पारंपरिक इतिहासलेखन की सीमाओं को चुनौती देते हुए स्त्रियों की भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया है। लेख में यह प्रतिपादित किया गया है कि प्राचीन समाज में स्त्रियाँ केवल 'गृहिणी' या 'निर्भर इकाई' नहीं थीं, बल्कि वे आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी निभाती थीं। लेखिका ने साहित्यिक स्रोतोंकृविशेषतः बौद्ध एवं जैन ग्रंथों का पुनर्पाठ करते हुए यह दिखाया है कि इन ग्रंथों में स्त्रियों की उपस्थिति बहुआयामी है। साथ ही, उन्होंने पुरातात्विक साक्ष्यों जैसे अभिलेखों एवं मूर्तिकला का उपयोग कर यह सिद्ध किया है कि स्त्रियाँ दान, धार्मिक अनुष्ठानों एवं सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।[4]

सिंह, उपेन्द्र (2023) इनका यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास का एक समग्र एवं स्रोत–आधारित अध्ययन प्रस्तुत करता है। उन्होंने साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के समन्वय के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति का बहुआयामी विश्लेषण किया है। लेखिका के अनुसार, स्त्रियों की भूमिका को समझने के लिए केवल धार्मिक ग्रंथों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है, बल्कि अभिलेखीय साक्ष्य, स्थापत्य एवं मूर्तिकला का भी अध्ययन आवश्यक है। उन्होंने यह दर्शाया है कि कई अभिलेखों में स्त्रियों द्वारा दान दिए जाने के प्रमाण मिलते हैं, जो उनकी आर्थिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक सक्रियता को इंगित करते हैं।[5]

चक्रवर्ती, उमा (2022) उमा चक्रवर्ती का यह कार्य भारतीय समाज में स्त्री एवं जाति के अंतर्संबंध को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने "ब्राह्मणवादी पितृसत्ता" (Brahmanical Patriarchy) की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार सामाजिक एवं धार्मिक संरचनाओं ने स्त्रियों की स्वतंत्रता को नियंत्रित किया। इस अध्ययन में यह तर्क दिया गया है कि धर्मशास्त्रों एवं सामाजिक नियमों के माध्यम से स्त्रियों की भूमिका को सीमित किया गया तथा उन्हें मुख्यतः पारिवारिक दायित्वों तक ही सीमित कर दिया

गया। यह दृष्टिकोण प्राचीन बिहार जैसे क्षेत्रों में भी लागू होता है, जहाँ धार्मिक परंपराओं का गहरा प्रभाव था।[6]

कुमारी, नेहा (2022) नेहा कुमारी ने बौद्ध साहित्य के आधार पर स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने त्रिपिटक एवं जातक कथाओं का उपयोग करते हुए यह दर्शाया है कि बौद्ध धर्म ने स्त्रियों को धार्मिक जीवन में प्रवेश का अवसर प्रदान किया। हालाँकि, लेखिका यह भी इंगित करती हैं कि भिक्षुणी संघ पर कुछ नियम एवं प्रतिबंध लगाए गए थे, जो लैंगिक असमानता को दर्शाते हैं। इस प्रकार, उनका अध्ययन स्त्रियों की स्थिति के द्वंद्वात्मक स्वरूप सशक्तिकरण एवं सीमाओं दोनों को उजागर करता है।[7]

थापर, रोमिला (2021) रोमिला थापर का यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने ऐतिहासिक स्रोतों के आलोचनात्मक विश्लेषण के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति को समझने का प्रयास किया है। थापर के अनुसार, प्रारंभिक वैदिक काल में स्त्रियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी, किन्तु उत्तरकाल में सामाजिक एवं धार्मिक परिवर्तनों के कारण उनकी स्थिति में गिरावट आई। उन्होंने इस परिवर्तन को सामाजिक संरचना, संपत्ति संबंधों एवं धार्मिक मान्यताओं से जोड़ा है।[8]

यादव, अंजलि (2021) यादव का यह शोध विशेष रूप से प्राचीन बिहार पर केंद्रित है। उन्होंने मूर्तिकला, अभिलेख एवं स्थापत्य साक्ष्यों के आधार पर स्त्रियों की भूमिका का विश्लेषण किया है। लेखिका के अनुसार, यक्षिणी मूर्तियाँ एवं देवी प्रतिमाएँ स्त्रियों के सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व को दर्शाती हैं। साथ ही, अभिलेखों में स्त्रियों द्वारा किए गए दान उनके आर्थिक अधिकारों एवं सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं।[9]

अल्टेकर, अनन्त सदाशिव (2021) अल्टेकर का यह क्लासिक अध्ययन प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति का व्यापक ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यद्यपि यह मूलतः पुराना कार्य है, किन्तु इसका पुनर्मुद्रण आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने वैदिक काल में स्त्रियों की उच्च स्थिति तथा उत्तरकाल में उसके ह्रास को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है। हालांकि, आधुनिक इतिहासकार उनके निष्कर्षों की पुनर्व्याख्या भी करते हैं।[10]

झा, दामोदर धर्मानंद (2020) डी.एन. झा ने प्राचीन भारतीय समाज की आर्थिक संरचना का विश्लेषण करते हुए स्त्रियों की स्थिति को समझाया है। उन्होंने यह तर्क दिया कि आर्थिक असमानता एवं वर्ग विभाजन के विकास ने स्त्रियों की स्वतंत्रता को सीमित किया। उनका दृष्टिकोण ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) से प्रभावित है, जो सामाजिक परिवर्तन को आर्थिक कारकों से जोड़ता है।[11]

जैन, कैलाश चन्द्र (2019) कैलाश चन्द्र जैन ने जैन धर्म के संदर्भ में स्त्रियों की भूमिका का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार, जैन धर्म ने स्त्रियों को धार्मिक जीवन में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान किया, जिससे उन्हें सामाजिक पहचान मिली।[12]

शर्मा, राम शरण (2018) राम शरण शर्मा का अध्ययन प्राचीन भारतीय समाज की संरचना को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के आधार पर स्त्रियों की स्थिति में आए बदलावों का विश्लेषण किया है।

उनके अनुसार, निजी संपत्ति एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सुदृढ़ होने से स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई।[13]

अध्ययन के उद्देश्य

1. प्राचीन बिहार में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना।
2. साहित्यिक स्रोतों के आधार पर स्त्री जीवन का अध्ययन करना।
3. पुरातात्विक साक्ष्यों के माध्यम से स्त्रियों की भूमिका का पुनर्निर्माण करना।
4. स्त्रियों के धार्मिक, आर्थिक एवं शैक्षिक योगदान का अध्ययन करना।
5. समय के साथ स्त्रियों की स्थिति में आए परिवर्तनों के कारणों का विश्लेषण करना।

परिकल्पना

1. प्रारंभिक काल में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत सशक्त एवं स्वतंत्र थी ।
2. बौद्ध एवं जैन धर्म ने स्त्रियों को वैकल्पिक धार्मिक पहचान प्रदान की ।
3. सामाजिक एवं आर्थिक संरचनाओं के परिवर्तन से स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई ।
4. साहित्यिक स्रोत स्त्रियों की स्थिति का आंशिक एवं आदर्शीकृत चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन बिहार की स्त्रियों की स्थिति बहुआयामी एवं गतिशील थी, जिसे किसी एक निश्चित रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। प्रारंभिक काल, विशेषकर वैदिक एवं मिथिला क्षेत्र की परंपरा में, स्त्रियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता एवं सम्मान प्राप्त था। वे शिक्षा प्राप्त करती थीं, दार्शनिक विमर्श में भाग लेती थीं तथा धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय थीं। यह स्थिति उस समय के सामाजिक संतुलन एवं तुलनात्मक समानता को दर्शाती है। महाजनपद काल एवं विशेषतः मगध और वैशाली के संदर्भ में स्त्रियों की भूमिका और अधिक स्पष्ट होती है। वैशाली जैसे गणराज्य में स्त्रियों को सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त थी, जबकि बौद्ध एवं जैन धर्म के उदय ने स्त्रियों को एक नई धार्मिक पहचान प्रदान की। भिक्षुणी संघ एवं साध्वी परंपरा के माध्यम से स्त्रियाँ आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर सकीं, जो उनके सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण चरण था। मौर्य काल में स्त्रियों की स्थिति में विविधता देखने को मिलती है। वे एक ओर पारिवारिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं, वहीं दूसरी ओर प्रशासनिक एवं आर्थिक गतिविधियों में भी अप्रत्यक्ष रूप से सहभागी थीं। गुप्त काल में सामाजिक संरचना अधिक रूढ़िवादी होती गई, जिससे स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सुदृढ़ होने, विवाह संबंधी प्रतिबंधों एवं सामाजिक मान्यताओं के कारण स्त्रियों की स्वतंत्रता सीमित हो गई।

साहित्यिक स्रोतों एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के संयुक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ केवल सामाजिक संरचना का निष्क्रिय अंग नहीं थीं, बल्कि वे ऐतिहासिक परिवर्तन की सक्रिय भागीदार थीं। उन्होंने धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसे पारंपरिक इतिहासलेखन में पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन बिहार की स्त्रियों का इतिहास भारतीय समाज के विकास को समझने में एक अनिवार्य तत्व है। यह अध्ययन न केवल अतीत की सामाजिक संरचना को स्पष्ट करता है, बल्कि वर्तमान में लैंगिक समानता एवं सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को भी ऐतिहासिक आधार प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची

1. वर्मा, प्रिया (2025) "प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की भूमिका : एक अंतःविषयक अध्ययन", भारतीय सामाजिक इतिहास जर्नल, 12(1), 55–78।
2. मिश्रा, रश्मि (2024) "बौद्ध धर्म और स्त्री सशक्तिकरणः प्राचीन बिहार के संदर्भ में", इतिहास एवं संस्कृति पत्रिका, 15(2), 101–120।
3. पांडेय, संगीता (2024) "जैन धर्म में स्त्रियों की स्थितिः एक ऐतिहासिक विश्लेषण", भारतीय दर्शन समीक्षा, 8(3), 67–89।
4. सिंह, मीनाक्षी (2024) "प्राचीन भारत में स्त्रियों की सामाजिक भूमिका : एक पुनर्मूल्यांकन", भारतीय इतिहास समीक्षा, 48(2), 112–130।
5. सिंह, उपेन्द्र (2023) प्राचीन एवं प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, पियर्सन, पृ0 91
6. चक्रवर्ती, उमा, (2022) जेंडरिंग कास्ट : भारतीय समाज में स्त्री एवं जाति, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ0 43
7. कुमारी, नेहा (2022) "बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति : साहित्यिक स्रोतों का विश्लेषण", इतिहास शोध पत्रिका, 12(1), 45–60।
8. थापर, रोमिला (2021) प्राचीन भारत, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 107
9. यादव, अंजलि (2021) "प्राचीन बिहार में स्त्रियों की स्थिति : पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर अध्ययन", प्राचीन इतिहास जर्नल, 9(3), 78–95।
10. अल्टेकर, अनन्त सदाशिव (2021) हिन्दू सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति (पुनर्मुद्रण), नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 47
11. झा, दामोदर धर्मानंद (2020) प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ0 113
12. जैन, कैलाश चन्द्र (2019) जैन धर्म का इतिहास, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
13. शर्मा, राम शरण (2018) प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान।

◀◀ ▶▶

सशक्त महिला, समृद्ध राष्ट्रः कुटीर उद्योगों में महिलाओं की भूमिका

हरेन्द्र यादव*

सारांश

भारत की अर्थव्यवस्था में कुटीर उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। ये उद्योग न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करते हैं, बल्कि महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक सशक्तिकरण का भी प्रभावी माध्यम हैं। वर्तमान समय में "सशक्त महिला, समृद्ध राष्ट्र" की अवधारणा को साकार करने में महिला उद्यमिता, स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups), स्थानीय उत्पादन तथा सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों की भूमिका निरंतर बढ़ रही है। महिलाएँ हस्तकरघा, हथकरघा, खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, मधुमक्खी पालन, हस्तशिल्प, अगरबत्ती निर्माण, सिलाई-कढ़ाई, जैविक उत्पाद एवं डिजिटल विपणन जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दे रही हैं। प्रस्तुत लेख में कुटीर उद्योगों में महिलाओं की भूमिका, उनके आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण, सरकारी योजनाओं, प्रमुख चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यदि महिलाओं को पर्याप्त प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, तकनीकी ज्ञान और विपणन सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ तो वे आत्मनिर्भर भारत एवं विकसित भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

मुख्य शब्द: महिला सशक्तिकरण, कुटीर उद्योग, महिला उद्यमिता, स्वयं सहायता समूह, आत्मनिर्भर भारत, ग्रामीण विकास, सूक्ष्म उद्योग।

1. प्रस्तावना

भारत को अधिकांशत: खेती-बाड़ी वाला देश कहा जाता है, जहाँ कुटीर और गाँव के उद्योगों की एक समृद्ध परंपरा है, जो सदियों से इसकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी का काम करते रहे हैं। हस्तकरघा, हस्तशिल्प,, मिट्टी के बर्तन, मेटल क्राफ्ट, खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी फार्मिंग, मधुमक्खी पालन, बांस और लकड़ी से बने उत्पाद, सिलाई, कढ़ाई और अगरबत्ती बनाने जैसी पारंपरिक गतिविधियों ने न सिर्फ़ देश की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित रखा है, बल्कि लाखों ग्रामीण परिवारों के लिए टिकाऊ रोज़गार भी पैदा किया है।[1]

महिलाओं ने उत्पादन, प्रोसेसिंग, मार्केटिंग और पारिवारिक उद्यमों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से हिस्सा लेकर और साथ ही अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को पूरा करके इन उद्योगों की वृद्धि और निरंतरता में अहम भूमिका निभा रही है। महात्मा गांधी कॉटेज उद्योगों को ग्राम स्वराज (गाँव का स्व-शासन), आर्थिक आत्मनिर्भरता और ग्रामीण विकास की नींव मानते थे, और इस बात पर ज़ोर देते थे कि स्वदेशी संसाधनों और कौशल पर आधारित स्थानीय उत्पादन गरीबी, बेरोज़गारी और आर्थिक असमानता को असरदार तरीके से कम कर सकता है। आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था में, महिलाओं का सशक्तीकरण न सिर्फ़ सामाजिक न्याय और लैंकिक समानता का मामला बन गया है, बल्कि समावेशी और टिकाऊ आर्थिक विकास के लिए एक बुनियादी शर्त भी बन गयी है।[2]

भारत सरकार ने महिलाओं की उद्यमशीलता को बढ़ावा देने और कुटीर उद्योग को मजबूत करने के लिए कई पहल शुरू की हैं, जिनमें विकसित भारत 2047, आत्मनिर्भर भारत, मेक इन इंडिया, वोकल फॉर लोकल, लखपति दीदी इनिशिएटिव, पीएम विश्वकर्मा स्कीम, प्रधानमंत्री एम्प्लॉयमेंट जेनरेशन प्रोग्राम (PMEGP), प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY), और दीनदयाल अंत्योदय योजना–नेशनल रूरल लाइवलीहुड मिशन (DAY-NRLM) शामिल हैं। आज, लाखों ग्रामीण महिलाएं स्वयं सहायता समूह (SHGs) से जुड़कर सशक्त बन रही हैं और खाद्य प्रसंस्करण, हैंडीक्राफ्ट्स, डेयरी फार्मिंग, मशरूम की खेती, जैविक उत्पाद निर्माण, बुनाई, सिलाई-कढ़ाई और स्थानीय सामान बनाने जैसी अलग-अलग आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेने लगी हैं, जिससे घर की आय में बढ़ोत्तरी और स्थानीय आर्थिक विकास में अहम योगदान मिलने लगा है। कुटीर उद्योग महिलाओं के लिए खास तौर पर फायदेमंद हैं क्योंकि इनमें काफी कम पूँजी निवेश की ज़रूरत होती है, स्थानीय स्तर पर मौजूद कच्चे माल का इस्तेमाल होता है, परिवार की मेहनत पर निर्भर रहते हैं, और महिलाओं को घर की ज़िम्मेदारियों के साथ इनकम बढ़ाने वाली गतिविधियों में संतुलन बनाने में मदद मिलती है। आर्थिक आज़ादी महिलाओं की फ़ैसले लेने की ताकत, सामाजिक प्रतिष्ठा, नेतृत्व की काबिलियत और आत्मविश्वास को मज़बूत करती है, साथ ही बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और पोषण से परिवार के जीवन स्तर पर सामुदायिक सुधार करती है। डिजिटल टेक्नोलॉजी, ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन मार्केटिंग के बढ़ने से महिला उद्यमियों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुंचने में और मदद मिली है। हालांकि, वित्त तक सीमित पहुंच, तकनीकीकरण सपोर्ट की कमी, कमज़ोर मार्केटिंग नेटवर्क, डिजिटल साक्षारता की कमी, कौशल विकास की कमी और लगातार सामाजिक-सांस्कृतिक रुकावटें जैसी चुनौतियां इस क्षेत्र में

* असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर

महिलाओं की पूरी भागीदारी में रुकावट डालती रहती हैं।[3] "सशक्त महिला, समृद्ध राष्ट्र" की अवधारणा का वास्तविक आधार महिलाओं की आर्थिक भागीदारी, उद्यमिता, कौशल विकास तथा कुटीर उद्योग का व्यापक और सतत विकास है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक (Descriptive and Analytical) शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक (Secondary) स्रोतों पर आधारित है, जिनमें सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSME), ग्रामीण विकास मंत्रालय, नीति आयोग, नाबार्ड (NABARD), राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5), विश्व बैंक, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC), भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्टें, शोध-पत्र, पुस्तकें तथा अन्य प्रकाशित दस्तावेज़ सम्मिलित हैं। उपलब्ध आँकड़ों एवं साहित्य का तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण कर कुटीर उद्योगों में महिलाओं की भूमिका, आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण, सरकारी योजनाओं के प्रभाव तथा प्रमुख चुनौतियों का मूल्यांकन किया गया है।

3. कुटीर उद्योगों की अवधारणा

कुटीर उद्योग वे उद्योग हैं जो कम पूंजी, स्थानीय संसाधनों, पारिवारिक श्रम और पारंपरिक तकनीकों के आधार पर संचालित किए जाते हैं। भारत में ये उद्योग ग्रामीण रोजगार, स्थानीय उत्पादन और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSME) के अनुसार कुटीर उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं तथा रोजगार सृजन में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।भारत में कुटीर उद्योगों की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है और हस्तकरघा, हस्तशिल्प, मिट्टी के बर्तन, धातु शिल्प, बांस एवं लकड़ी के उत्पाद, खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी तथा अन्य ग्रामीण उद्योग देश की सांस्कृतिक एवं आर्थिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। महात्मा गांधी ने कुटीर उद्योगों को ग्राम स्वराज, आत्मनिर्भरता तथा ग्रामीण विकास का आधार माना तथा उनका मत था कि स्थानीय संसाधनों और श्रम पर आधारित उद्योग ग्रामीण गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करने का प्रभावी माध्यम हैं ।[4] अर्थशास्त्री जे. सी. कुमारप्पा ने भी ग्रामोद्योगों को विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था और संतुलित ग्रामीण विकास का प्रमुख साधन बताया है।[5] वर्तमान समय में कुटीर उद्योग महिला उद्यमिता, स्वरोजगार, स्थानीय नवाचार तथा समावेशी आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। डिजिटल प्रौद्योगिकी, ई-कॉमर्स तथा सरकारी योजनाओं के सहयोग से इन उद्योगों की बाजार पहुँच और प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे वे आत्मनिर्भर भारत और सतत ग्रामीण विकास की दिशा में एक सशक्त आधार के रूप में स्थापित हो रहे हैं ।[6]

4. कॉटेज इंडस्ट्री में महिलाओं की भूमिका

भारत के कुटर उद्योग क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका सबसे प्रमुख और सक्रिय कार्य करने वाली हैं। खासकर ग्रामीण इलाकों में, महिलाएं खेती-बाड़ी के कार्यों के साथ-साथ घर से किए जाने वाले कई तरह के कार्यों में भी सक्रिय रूप से भागीदारी सुनिश्चित कर लेती हैं, जैसे हैंडलूम बुनाई, हैंडीक्राफ्ट, फूड प्रोसेसिंग, डेयरी फार्मिंग, मधुमक्खी पालन, अगरबत्ती और मोमबत्ती बनाना, सिलाई, कढ़ाई, बांस और लकड़ी से बने क्राफ्ट, और ऑर्गेनिक और नेचुरल प्रोडक्ट बनाना। ये गतिविधियां न केवल पारंपरिक कौशल और स्थानीय ज्ञान को बनाए रखते हैं, बल्कि स्थायी रोज़गार और घर की अतिरिक्त आय भी पैदा करते हैं। इन उद्योगों ने महिलाओं को घर के निकट रोजगार उपलब्ध कराने के साथ-साथ उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता को भी सुदृढ़ किया है। सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSME) की वार्षिक रिपोर्ट 2024–25 के अनुसार भारत में 6.33 करोड़ से अधिक सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSMEs) कार्यरत हैं, जो देश में लगभग 26–27 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं। सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (MSME) के अनुसार, भारत में पंजीकृत सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम (MSMEs) में महिलाओं के स्वामित्व हक वाले और महिलाओं द्वारा प्रबंधन किए जाने वाले एंटरप्राइज़ का हिस्सा 20% से अधिक होती है, जो उद्यमशीलता और ग्रामीण उद्योग विकास में महिलाओं की बढ़ती भूमिका को दर्शाता है। कुटीर उद्योग में महिलाओं की भागीदारी ने रोज़गार पैदा करने, लोकल वैल्यू एडिशन और सबको साथ लेकर चलने वाले आर्थिक विकास में अहम योगदान दिया है, साथ ही परिवार की रोज़ी-रोटी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मज़बूत किया है।[7]

5. आर्थिक सशक्तिकरण में योगदान

कुटीर उद्योग महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम बनकर उभरे हैं। इन उद्योगों के माध्यम से महिलाएँ नियमित आय अर्जित कर परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाती हैं तथा गरीबी उन्मूलन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) के अंतर्गत वर्ष 2024–25 तक लगभग 10 करोड़ ग्रामीण महिलाएँ 90 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूहों (SHGs) से जुड़ चुकी हैं। इन समूहों के माध्यम से महिलाएँ खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, मसाला निर्माण, हस्तशिल्प, सिलाई-कढ़ाई, कृषि आधारित प्रसंस्करण तथा अन्य स्थानीय उद्योगों का संचालन कर रही हैं। नाबार्ड (NABARD) की 'Status of Microfinance in India 2024–25' रिपोर्ट के अनुसार स्वयं सहायता समूहों को उपलब्ध कराए गए बैंक ऋण का संचयी बकाया ₹2.80 लाख करोड़ से अधिक हो गया है, जबकि बैंक ऋण वितरण में निरंतर वृद्धि दर्ज की गई है। इससे महिला उद्यमिता, वित्तीय समावेशन तथा स्वरोजगार को

उल्लेखनीय बढ़ावा मिला है। ग्रामीण महिलाओं की बढ़ती आय के परिणामस्वरूप बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण तथा आवासीय सुविधाओं में भी सकारात्मक सुधार देखा गया है।[8]

6. सामाजिक सशक्तिकरण में भूमिका (आँकड़ों सहित)

कुटीर उद्योग महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरे हैं। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने के पश्चात महिलाओं की परिवार एवं समाज में निर्णय लेने की क्षमता, सामाजिक प्रतिष्ठा, नेतृत्व कौशल तथा आत्मविश्वास में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। आय अर्जित करने वाली महिलाएँ परिवार के आर्थिक निर्णयों, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, संपत्ति निवेश तथा सामाजिक गतिविधियों में अधिक प्रभावी भूमिका निभाती हैं। स्वयं सहायता समूहों (Self Help Groups–SHGs) के माध्यम से महिलाओं में बचत की प्रवृत्ति, वित्तीय अनुशासन, सामूहिक नेतृत्व, उद्यमिता तथा सामाजिक जागरूकता का विकास हुआ है। दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) के अंतर्गत वर्ष 2024–25 तक लगभग 10 करोड़ ग्रामीण महिलाएँ 90 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूहों से जुड़ चुकी हैं, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में महिला नेतृत्व और सामुदायिक सहभागिता को नई दिशा मिली है।[9] इन समूहों के माध्यम से महिलाएँ केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ग्राम पंचायतों, ग्राम संगठनों तथा स्थानीय विकास कार्यक्रमों में भी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5, 2019–21) के अनुसार भारत में 84 प्रतिशत से अधिक विवाहित महिलाएँ अपने स्वास्थ्य, घरेलू खरीद तथा रिश्तेदारों से मिलने जैसे पारिवारिक निर्णयों में भागीदारी करती हैं, जो महिलाओं के बढ़ते सामाजिक सशक्तिकरण का संकेत है।[10] इसी प्रकार नीति आयोग (2024)**[11]** ने अपनी रिपोर्ट *Women-led Development* में स्पष्ट किया है कि विकसित भारत–2047 की अवधारणा का आधार महिला नेतृत्व आधारित विकास है तथा महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक भागीदारी के बिना समावेशी विकास संभव नहीं है। विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum, Global Gender Gap Report 2024) के अनुसार भारत में महिला आर्थिक एवं राजनीतिक भागीदारी में निरंतर सुधार देखा जा रहा है, जिसमें महिला उद्यमिता और स्वयं सहायता समूहों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गई है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की प्रगति रिपोर्टों के अनुसार स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी महिलाओं में वित्तीय साक्षरता, डिजिटल भुगतान प्रणाली के उपयोग, बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच तथा सामुदायिक नेतृत्व क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इससे महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ा है, लैंगिक समानता को प्रोत्साहन मिला है तथा ग्रामीण समाज में उनकी सामाजिक स्थिति अधिक सुदृढ़ हुई है। कुटीर उद्योगों के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक सम्मान, आत्मनिर्भरता और नेतृत्व की नई पहचान प्राप्त हुई है, जो समावेशी एवं सतत विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।[12]

7. सरकारी योजनाओं की भूमिका

भारत सरकार ने महिलाओं को कुटीर उद्योगों से जोड़कर उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से अनेक महत्वाकांक्षी योजनाएँ प्रारम्भ की हैं। प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP)**,** दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM)**,** प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY)**,** स्टैंड-अप इंडिया योजना**,** प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना**,** वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट (ODOP) तथा लखपति दीदी योजना जैसी योजनाओं ने महिला उद्यमिता को नई गति प्रदान की है।[13] खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) की वार्षिक रिपोर्ट 2024–25 के अनुसार PMEGP के माध्यम से देशभर में 10 लाख से अधिक रोजगार अवसर सृजित किए गए हैं, जिनमें महिलाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ रही है। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के अंतर्गत वर्ष 2015 से मार्च 2025 तक स्वीकृत कुल ऋणों में लगभग 68 प्रतिशत ऋण महिला उद्यमियों को प्रदान किए गए, जिससे लाखों महिलाओं ने सूक्ष्म एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना की तथा स्वरोजगार प्राप्त किया।[14] स्टैंड-अप इंडिया योजना के माध्यम से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिला उद्यमियों को ₹10 लाख से ₹1 करोड़ तक का बैंक ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है, जिससे नए उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला है।[15] प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना (2023) के अंतर्गत पारंपरिक कारीगरों एवं शिल्पकारों को कौशल प्रशिक्षण, आधुनिक उपकरणों के लिए वित्तीय सहायता, डिजिटल लेन-देन प्रोत्साहन तथा विपणन सहयोग प्रदान किया जा रहा है, जिसका लाभ बड़ी संख्या में महिला कारीगरों को भी प्राप्त हो रहा है।[16] इसी प्रकार वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट (ODOP) कार्यक्रम स्थानीय उत्पादों की ब्रांडिंग, गुणवत्ता सुधार, पैकेजिंग तथा निर्यात को बढ़ावा देकर महिला उद्यमियों के लिए राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजारों के नए अवसर उपलब्ध करा रहा है। भारत सरकार ने "लखपति दीदी" अभियान के अंतर्गत 3 करोड़ ग्रामीण महिलाओं को सफल उद्यमी बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया है। केंद्रीय बजट 2024–25 में इस अभियान का विस्तार करते हुए महिला स्वयं सहायता समूहों को कौशल विकास, वित्तीय सहायता, डिजिटल विपणन तथा मूल्य संवर्धन से जोड़ने पर विशेष बल दिया गया है।[17] दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों को बैंक ऋण, उद्यमिता प्रशिक्षण, डिजिटल वित्तीय सेवाएँ तथा विपणन सहायता उपलब्ध कराई जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप लाखों ग्रामीण महिलाएँ खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, हस्तशिल्प, सिलाई-कढ़ाई, जैविक कृषि तथा अन्य कुटीर उद्योगों के माध्यम से स्थायी आजीविका अर्जित कर रही हैं। इन योजनाओं ने महिलाओं की आय, रोजगार, उद्यमिता, वित्तीय

समावेशन तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में उल्लेखनीय वृद्धि की है और विकसित भारत–2047 के लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।[18]

8. चुनौतियाँ

महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के बावजूद कुटीर उद्योगों के विकास में अनेक चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। पीरियॉडिक लेबर फोर्स सर्वे (PLFS) 2023–24 के अनुसार भारत में महिला श्रम शक्ति भागीदारी दर (LFPR) में सुधार हुआ है, फिर भी बड़ी संख्या में महिलाएँ असंगठित एवं कम आय वाले कार्यों में संलग्न हैं। ग्रामीण महिला उद्यमियों को बैंक ऋण, आधुनिक तकनीक, डिजिटल विपणन, गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण तथा ब्रांडिंग सुविधाओं तक सीमित पहुँच प्राप्त है। विश्व बैंक (2024) के अनुसार यदि भारत में महिलाओं की श्रम शक्ति भागीदारी पुरुषों के बराबर हो जाए, तो देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। इसके अतिरिक्त डिजिटल विभाजन, सामाजिक रूढ़ियाँ, बाजार तक सीमित पहुँच तथा ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म से अपर्याप्त जुड़ाव भी महिला उद्यमिता के विस्तार में बाधा उत्पन्न करते हैं।

9. सुझाव

महिलाओं की कुटीर उद्योगों में भागीदारी को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए उन्हें सरल एवं कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाना चाहिए तथा स्वयं सहायता समूहों को आधुनिक मशीनरी एवं तकनीकी सहायता प्रदान की जानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल विकास, डिजिटल साक्षरता, वित्तीय प्रबंधन तथा उद्यमिता विकास से संबंधित नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाने चाहिए। महिलाओं को ई-कॉमर्स, डिजिटल विपणन, जीआई टैग आधारित उत्पादों तथा निर्यात बाजार से जोड़ने के लिए विशेष नीति अपनाई जानी चाहिए। स्थानीय उत्पादों की गुणवत्ता, ब्रांडिंग, पैकेजिंग एवं मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देकर उनकी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। प्रत्येक जिले में महिला उद्यमिता सहायता केंद्र स्थापित कर तकनीकी मार्गदर्शन, वित्तीय परामर्श तथा विपणन सहयोग उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इन प्रयासों से महिला उद्यमिता को नई गति मिलेगी तथा विकसित भारत–2047 के लक्ष्य को प्राप्त करने में कुटीर उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे।

10. निष्कर्ष

कुटीर उद्योग महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक एवं उद्यमशील सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम हैं, जो आत्मनिर्भर भारत और विकसित भारत–2047 के लक्ष्य को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन उद्योगों के माध्यम से महिलाओं को स्थानीय स्तर पर रोजगार, नियमित आय, उद्यमिता के अवसर तथा वित्तीय आत्मनिर्भरता प्राप्त हो रही है, जिससे उनके जीवन स्तर, सामाजिक प्रतिष्ठा, निर्णय लेने की क्षमता एवं नेतृत्व कौशल में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। स्वयं सहायता समूहों, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP), प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना, लखपति दीदी अभियान तथा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन जैसी सरकारी पहलों ने महिला उद्यमिता को नई दिशा प्रदान की है। यद्यपि वित्तीय संसाधनों की सीमित उपलब्धता, तकनीकी प्रशिक्षण का अभाव, डिजिटल साक्षरता की कमी, विपणन संबंधी चुनौतियाँ तथा सामाजिक रूढ़ियाँ अभी भी महिला उद्यमियों के समक्ष प्रमुख बाधाएँ हैं, फिर भी प्रभावी नीतिगत हस्तक्षेप, कौशल विकास, वित्तीय समावेशन, डिजिटल सशक्तिकरण तथा बाजार तक बेहतर पहुँच सुनिश्चित करके इन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि कुटीर उद्योग केवल महिलाओं के लिए रोजगार का साधन नहीं हैं, बल्कि वे समावेशी आर्थिक विकास, ग्रामीण समृद्धि, महिला नेतृत्व आधारित विकास तथा राष्ट्र निर्माण के सशक्त आधार हैं। इसलिए "सशक्त महिला, समृद्ध राष्ट्र" की अवधारणा को व्यवहारिक रूप देने के लिए महिलाओं की उद्यमिता, कौशल विकास तथा कुटीर उद्योगों को निरंतर प्रोत्साहित करना समय की प्रमुख आवश्यकता है।

संदर्भ-ग्रन्थ

1- Government of India. *Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises (MSME): Annual Report*, विभिन्न संस्करण।

2- United Nations. *Transforming our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development*, 2015.

3- International Labour Organization (ILO). *Women in Entrepreneurship and Rural Employment*, विभिन्न रिपोर्टें.

4- गांधी, महात्मा (1958). *ग्राम स्वराज.* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

5- Kumarappa, J. C. (1945). *The Economy of Permanence*. Sarva Seva Sangh Prakashan, Varanasi.

6- Mathur, B. L. (2010). *Rural Development and Cottage Industries in India*. RBSA Publishers, Jaipur.

7- Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises. (2025). *Annual Report 2024–25*. Government of India.

8- World Bank. (2024). *Women, Business and the Law 2024*. Washington, DC: World Bank.
9- Ministry of Rural Development. (2025). *Annual Report 2024–25: Deendayal Antyodaya Yojana–National Rural Livelihood Mission (DAY-NRLM).* Government of India.
10- International Institute for Population Sciences (IIPS) & Ministry of Health and Family Welfare. (2021). *National Family Health Survey (NFHS-5), 2019–21.* Mumbai.
11- NITI Aayog. (2024). *Women-led Development: Towards Viksit Bharat 2047.* Government of India.
12- World Economic Forum. (2024). *Global Gender Gap Report 2024.* Geneva: WEF.
13- भारत सरकार, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय. *प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP) दिशा-निर्देश एवं वार्षिक प्रतिवेदन*, नई दिल्ली, विभिन्न संस्करण।
14- भारत सरकार, वित्त मंत्रालय. *प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY): वार्षिक प्रगति रिपोर्ट*, नई दिल्ली, 2025.
15- भारत सरकार, वित्तीय सेवा विभाग. *स्टैंड-अप इंडिया योजना: संचालन दिशा-निर्देश एवं प्रगति रिपोर्ट*, नई दिल्ली, 2025.
16- भारत सरकार, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय. *प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना: दिशा-निर्देश*, नई दिल्ली, 2023.
17- भारत सरकार, वित्त मंत्रालय. *केंद्रीय बजट 2024–25: बजट भाषण*, नई दिल्ली, 2024. (लखपति दीदी अभियान के विस्तार एवं महिला स्वयं सहायता समूहों से संबंधित प्रावधान)
18- Ministry of Rural Development. (2025). *Lakhpati Didi Initiative: Progress Report 2024–25.* Government of India.

बदलते राजनीतिक परिदृश्य में भारत–नेपाल सम्बन्ध : एक अध्ययन

डॉ. दिलीप कुमार*

प्रस्तावना

दक्षिण एशियाई भू–राजनीति में भारत और नेपाल के बीच के संबंध केवल दो संप्रभु राष्ट्रों की कूटनीतिक सीमाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ये सदियों पुराने गहरे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक ताने–बाने से बुने हुए हैं। भारत और नेपाल 1,751 किलोमीटर लंबी सीमा साझा करते हैं (जो सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड राज्यों से होकर गुजरती है)। दोनों देशों के बीच संबंधों की विशिष्टता का सबसे बड़ा आधार उनकी भौगोलिक निकटता, खुली अंतरराष्ट्रीय सीमा और रोटी–बेटी का रिश्ता है।[1] यह सांस्कृतिक निरंतरता रामायण काल से लेकर बौद्ध धर्म के प्रसार और आधुनिक काल तक अबाध रूप से चली आ रही है। कूटनीतिक और कानूनी दृष्टिकोण से, दोनों देशों के आधुनिक संबंधों की नींव 1950 की भारत–नेपाल शांति और मित्रता संधि के माध्यम से रखी गई थी, जिसने दोनों देशों के नागरिकों को एक–दूसरे के देश में निवास करने, संपत्ति खरीदने, व्यापार करने और सरकारी नौकरियों में शामिल होने के समान अधिकार प्रदान किए।

हालांकि, 21वीं सदी के बदलते वैश्विक परिदृश्य और विशेष रूप से हाल के वर्षों में नेपाल के भीतर आए बड़े राजनीतिक भूचालों ने इन द्विपक्षीय संबंधों को एक नए और अत्यधिक संवेदनशील मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। नेपाल में राजशाही की समाप्ति के बाद से शुरू हुआ राजनीतिक संक्रमण काल वर्तमान समय में एक नए राजनीतिक पुनर्गठन के दौर में प्रवेश कर चुका है। आज के समय में दोनों देशों के संबंध केवल पारंपरिक कूटनीति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ये जल–विद्युत ऊर्जा, व्यापार, डिजिटल कनेक्टिविटी, सीमा सुरक्षा, नेपाल की आंतरिक राजनीतिक अस्थिरता और सबसे महत्वपूर्ण हिमालयी क्षेत्र में चीन की बढ़ती विस्तारवादी नीतियों के प्रतिकार के इर्द–गिर्द घूम रहे हैं। इसके साथ ही दोनों देशों सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ), बिम्सटेक (बंगाल की खाड़ी बहुक्षेत्रीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग पहल) और बीबीआईएन (बांग्लादेश, भूटान, भारत और नेपाल), अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (आईएसए) आदि जैसे क्षेत्रीय एवं संगठनो के सदस्य हैं। ।भारत की नेबरहुड फर्स्ट नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए नेपाल की स्थिरता और उसका झुकाव भारत की ओर बने रहना रणनीतिक रूप से अनिवार्य माना गया है।

नेपाल का समकालीन राजनीतिक परिदृश्य और कूटनीतिक बदलाव

भारत–नेपाल संबंधों के समकालीन आयामों को समझने के लिए नेपाल की आंतरिक राजनीति में हाल ही में हुए बड़े संरचनात्मक बदलावों का विश्लेषण करना आवश्यक है। नेपाल की राजनीति ऐतिहासिक रूप से तीन पारंपरिक दलों– नेपाली कांग्रेस, सीपीएन–यूएमएल (कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ नेपाल) और माओवादियों के इर्द–गिर्द घूमती रही है, जिनकी आपसी खींचतान के कारण देश ने दशकों तक राजनीतिक अस्थिरता का सामना किया। इस पारंपरिक व्यवस्था में तब एक अभूतपूर्व बदलाव आया जब सितंबर 2025 में नेपाल के भीतर युवाओं और नई पीढ़ी के नेतृत्व में एक विशाल जेन–जी आंदोलन (Gen Z Movement) भड़क उठा। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर प्रतिबंध लगाने और भ्रष्टाचार के खिलाफ भड़के इस आंदोलन के कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री के.पी. शर्मा ओली को अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा और अंततः संसद को भंग करना पड़ा।

इस जन–आक्रोश के बाद मार्च 2026 में हुए आम चुनावों ने नेपाल के राजनीतिक इतिहास में एक नए युग की शुरुआत की। पारंपरिक कम्युनिस्ट और रूढ़िवादी विचारधाराओं को दरकिनार करते हुए नेपाल की नई पीढ़ी और युवा नेताओं (जैसे राष्ट्रीय स्वतंत्र पार्टी) ने संसद में भारी बहुमत हासिल किया। नेपाल का यह बदलता राजनीतिक नेतृत्व किसी पुरानी विचारधारा या भारत–बनाम–चीन के पारंपरिक कार्ड से बंधा हुआ नहीं है। बलेंद्र शाह के नेतृत्व में नेपाल का नया नेतृत्व वैचारिक राजनीति से हटकर अपनी विदेश नीति को अत्यधिक यथार्थवादी, आर्थिक व्यावहारिकता, संप्रभु समानता और राजनयिक जुड़ाव परिणाम–उन्मुख और आर्थिक लाभ पर केंद्रित बना रहा है।[2] काठमांडू का नया नेतृत्व अब भारत के साथ संबंधों में पुरानी भावुकता

* सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, शिया पी.जी. कालेज, लखनऊ

या विशेष संबंध के दावे के बजाय संप्रभु समानता और राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दे रहा है, जिससे कूटनीतिक संवाद का तरीका काफी बदल गया है।

समकालीन विवाद के प्रमुख मुद्दे

सकारात्मक ऐतिहासिक संबंधों के बावजूद, वर्तमान बदलते परिदृश्य में दोनों देशों के बीच कुछ ऐसे गंभीर मुद्दे उभरकर आए हैं जो कूटनीतिक संबंधों में निरंतर खिंचाव पैदा कर रहे हैं। भारत और नेपाल के बीच सीमा विवाद समकालीन कूटनीति का सबसे संवेदनशील और उग्र मुद्दा बन चुका है। लगभग 1850 किलोमीटर लंबी खुली सीमा के अधिकांश हिस्से का सीमांकन हो चुका है, लेकिन सुदूर पश्चिमी क्षेत्र में स्थित कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा को लेकर दोनों देशों के दावे पूरी तरह विरोधाभासी हैं। इस विवाद की जड़ें 1816 की सुगौली संधि (Treaty of Sugauli) में छिपी हैं, जिसमें महाकाली (काली) नदी को दोनों देशों की सीमा माना गया था। हालांकि, नदी के उद्गम स्थल को लेकर दोनों पक्षों की व्याख्याएं अलग–अलग हैं। यह विवाद तब और अधिक गहरा गया जब भारत ने कैलाश मानसरोवर यात्रा को सुगम बनाने के लिए लिपुलेख दर्रे तक एक रणनीतिक सड़क मार्ग का उद्घाटन किया, जिस पर नेपाल ने संप्रभुता के उल्लंघन का आरोप लगाया। इसके प्रत्युत्तर में वर्ष 2020 में नेपाल सरकार ने एक नया राजनीतिक मानचित्र जारी किया जिसमें इन तीनों क्षेत्रों को नेपाली क्षेत्र का हिस्सा दिखाया गया और इसे अपने संविधान में भी शामिल कर लिया गया। वर्तमान समय में, जब भारत और चीन ने लिपुलेख दर्रे से व्यापार और तीर्थयात्रा मार्गों को पुनः सक्रिय करने के प्रयास शुरू किए हैं, तब नेपाल के नए नेतृत्व ने इस पर कूटनीतिक आपत्ति दर्ज कराई है, जिससे सीमा वार्ताओं को पुनः शुरू करने का दबाव बढ़ गया है।[3]

नेपाल की राजनीति में 1950 की शांति और मित्रता संधि को लंबे समय से एक असमान समझौते के रूप में देखा जाता रहा है, जिसे नेपाली राष्ट्रवादी दल भारत के बड़े भाई वाले प्रभाव के रूप में प्रचारित करते हैं। इस गतिरोध को सुलझाने के लिए दोनों देशों ने मिलकर 2016 में एक प्रबुद्ध व्यक्ति समूह (Eminent Persons Group) का गठन किया था, जिसने अपनी संयुक्त रिपोर्ट तैयार कर ली है। हालांकि, भारत सरकार ने सुरक्षा चिंताओं और खुली सीमा के प्रबंधन से जुड़े कुछ संवेदनशील तकनीकी पहलुओं के कारण इस रिपोर्ट को औपचारिक रूप से स्वीकार करने में संकोच दिखाया है। नेपाल के नए राजनीतिक परिदृश्य में इस रिपोर्ट को स्वीकार करने और संधि में संशोधन करने की मांग पुनः तेजी से उठ रही है, जो द्विपक्षीय संवाद में एक असहज स्थिति पैदा करती है।[4]

भारत और नेपाल की खुली सीमा जहाँ दोनों देशों के नागरिकों के आपसी जुड़ाव का जरिया है, वहीं यह सुरक्षा एजेंसियों के लिए एक बड़ी चुनौती भी है। इस खुली सीमा का दुरुपयोग अक्सर तीसरे देशों के तत्वों द्वारा अवैध घुसपैठ, जाली भारतीय मुद्रा की तस्करी, मानव तस्करी और मादक पदार्थों के अवैध व्यापार के लिए किया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त, नेपाल द्वारा सीमा पार अनौपचारिक व्यापार को रोकने के लिए लागू किए गए नए कड़े सीमा शुल्क नियमों (जैसे 100 नेपाली रुपये से अधिक के सामान पर शुल्क) ने सीमावर्ती क्षेत्रों के स्थानीय व्यापारियों और नागरिकों के बीच कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां पैदा की हैं, जिसके समाधान के लिए दोनों पक्षों को अधिक संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

भारत–नेपाल संबंधों के समकालीन विश्लेषण में चीन के बढ़ते रणनीतिक, आर्थिक और राजनीतिक दखल को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। तिब्बत के साथ सीमा साझा करने के कारण नेपाल चीन की बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) परियोजना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। 2015 की आर्थिक नाकेबंदी के बाद, नेपाल ने अपनी पारंपरिक भारतीय निर्भरता को कम करने के लिए चीन की ओर तेजी से कदम बढ़ाए और पारगमन व परिवहन समझौतों पर हस्ताक्षर किए, जिससे उसे चीनी बंदरगाहों तक पहुंच प्राप्त हुई। चीन का दखल केवल बुनियादी ढांचे के विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि वह नेपाल की लोकतांत्रिक और चुनावी प्रक्रियाओं में भी अपनी भूमिका बढ़ा रहा है।[5] हाल के चुनावों के दौरान चीनी विकास सहायता और तकनीकी अनुदानों का प्रवाह इस क्षेत्र में बीजिंग के गहरे रणनीतिक हितों को दर्शाता है। ट्रांस–हिमालयन मल्टी–डायमेंशनल कनेक्टिविटी नेटवर्क के तहत चीन के केरुंग से काठमांडू तक रेल मार्ग बिछाने की योजना भारत की उत्तरी सुरक्षा ग्रिड के लिए एक बड़ी सामरिक चुनौती है। भारत के लिए कूटनीतिक चुनौती यह है कि वह नेपाल को चीन के कर्ज जाल के प्रति सचेत करते हुए एक अधिक व्यावहारिक, पारदर्शी और तीव्र आर्थिक विकल्प प्रदान करे, जो नेपाल की संप्रभुता का सम्मान करता हो।

आर्थिक एकीकरण, ऊर्जा और डिजिटल सहयोग के नए आयाम

चुनौतियों और भू–राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के बीच, हाल के वर्षों में भारत और नेपाल के आर्थिक संबंधों में बदलाव भी देखे गए हैं। वर्तमान समय में दोनों देशों का ध्यान हार्ड–वायर्ड कनेक्टिविटी और आर्थिक अंतर्निर्भरता को मजबूत करने पर केंद्रित है। ऊर्जा सहयोग वर्तमान में द्विपक्षीय साझेदारी का सबसे सफल और चमकता हुआ सितारा है। दोनों देशों के बीच हुए ऐतिहासिक बिजली व्यापार समझौते (Power Trade Agreement) के तहत नेपाल अगले 10 वर्षों में भारत को 10,000 मेगावाट जल–विद्युत का निर्यात करने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। भारत न केवल नेपाल से बिजली खरीद रहा है, बल्कि वह अरुण–III जैसी विशाल पनबिजली परियोजनाओं में भारी निवेश भी कर रहा है।[6] इसके अतिरिक्त, नेपाल द्वारा बांग्लादेश को भारतीय ग्रिड के माध्यम से बिजली निर्यात करने के त्रिपक्षीय समझौते ने पूरे दक्षिण एशिया में उप–क्षेत्रीय ऊर्जा एकीकरण का एक नया मॉडल प्रस्तुत किया है।

बदलते राजनीतिक परिदृश्य में तकनीक और डिजिटल एकीकरण सहयोग का एक नया आयाम बन गया है। मार्च 2024 से भारत के UPI (यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस) और नेपाल के FonePay नेटवर्क के बीच आपसी तालमेल स्थापित होने से दोनों देशों के बीच सीमा पार डिजिटल भुगतान (Cross&Border QR Payments) बेहद आसान हो गया है।[7] इस फिनटेक क्रांति ने न केवल लाखों तीर्थयात्रियों और पर्यटकों को सुविधा प्रदान की है, बल्कि इसने अनौपचारिक बैंकिंग माध्यमों को समाप्त करके दोनों देशों के बीच वैध व्यापार और धन प्रेषण (Remittance) को अत्यधिक सुदृढ़ बनाया है।

भौतिक संपर्क को मजबूत करने के लिए दक्षिण एशिया की पहली सीमा पार पेट्रोलियम पाइपलाइन (मोतिहारी–अमलेखगंज पाइपलाइन) का सफल संचालन किया जा रहा है, जिससे नेपाल की ईंधन आपूर्ति की लागत और समय में भारी कमी आई है। इसके दूसरे चरण का विस्तार भी तेजी से चल रहा है। इसके साथ ही, जयनगर–बर्दीबास सीमा पार रेलवे लाइन और विभिन्न एकीकृत चेक पोस्टों (जैसे रूपईडीहा और सोनौली) के विकास ने सीमा पर माल ढुलाई की प्रक्रियाओं को आधुनिक और तीव्र बना दिया है। सॉफ्ट पावर (Soft Power) और जन–केंद्रित विकास सहायता भारत की नेपाल नीति का एक अत्यंत प्रभावी माध्यम रहे हैं। भारत सरकार नेपाल में स्थानीय स्तर पर श्उच्च प्रभाव वाले सामुदायिक विकास कूटनीति के माध्यम से स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण विद्युतीकरण और पेयजल आपूर्ति जैसे क्षेत्रों में सीधे जमीनी स्तर पर सहायता प्रदान कर रही है। यह सहायता बिना किसी बड़ी कूटनीतिक शर्तों के सीधे नेपाली जनता के जीवन स्तर को सुधारने में मदद करती है।

सांस्कृतिक मोर्चे पर, दोनों देश मिलकर रामायण सर्किट (अयोध्या से जनकपुर को जोड़ना) और बौद्ध सर्किट (बोधगया, सारनाथ से लुम्बिनी को जोड़ना) का साझा विकास कर रहे हैं। इन धार्मिक और पर्यटन सर्किटों के विकास से न केवल दोनों देशों के बीच धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा मिल रहा है, बल्कि यह दोनों देशों की नई पीढ़ी को उनकी साझा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूक करने का एक बेहतरीन जरिया सिद्ध हो रहा है।[8]

भविष्य की रणनीतिक राह और कूटनीतिक समाधान

बदलते राजनीतिक परिदृश्य और हिंद–प्रशांत क्षेत्र में गहराते भू–राजनीतिक समीकरणों के बीच भारत और नेपाल के संबंधों को अधिक टिकाऊ, विवाद–मुक्त और समतामूलक बनाने के लिए दोनों राष्ट्रों को पारंपरिक भावुकता के खोल से बाहर निकलकर अत्यंत व्यावहारिक रणनीतियों को अपनाना होगा। 21वीं सदी के बदलते वैश्विक परिदृश्य में दो संप्रभु पड़ोसियों के बीच की कूटनीति केवल ऐतिहासिक विरासतों के भरोसे नहीं चल सकती, बल्कि उसके लिए वर्तमान की आर्थिक और सुरक्षात्मक वास्तविकताओं के धरातल पर एक बहु–स्तरीय रणनीतिक रोडमैप तैयार करना अनिवार्य है। यह रणनीतिक मार्ग दोनों देशों के साझा विकास को गति देने के साथ–साथ पारंपरिक कूटनीतिक गतिरोधों का एक सम्मानजनक समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम सिद्ध हो सकता है।

कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा से जुड़े सीमा विवाद को दीर्घकाल तक अनसुलझा छोड़ना दोनों राष्ट्रों के कूटनीतिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। भविष्य का रणनीतिक समाधान इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों देश राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले राजनीतिक बयानों और मीडिया के दुष्प्रचारों से बचकर एक गंभीर संयुक्त सीमा कार्य समूह और विदेश सचिव स्तर की वार्ता को तुरंत सक्रिय करें। इस वार्ताओं का आधार राजनीतिक कूटनीति के बजाय विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक, तकनीकी और ऐतिहासिक साक्ष्य (जैसे 1816 की सुगौली संधि के मूल दस्तावेज और कार्टोग्राफिक मानचित्र) होना चाहिए। जब तक स्थायी सीमांकन नहीं

हो जाता, तब तक लिपुलेख दर्रे जैसे संवेदनशील क्षेत्रों को एक साझा आर्थिक व तीर्थयात्रा गलियारे के रूप में प्रबंधित करने की कूटनीतिक संभावनाओं पर विचार किया जाना चाहिए, जिससे नेपाल की संप्रभुता का भी सम्मान हो और भारत के सामरिक हित भी प्रभावित न हों ।

नेपाल की राजनीति में युवाओं के नेतृत्व में आए अभूतपूर्व बदलावों और राष्ट्रीय स्वतंत्र पार्टी जैसी गैर–पारंपरिक शक्तियों के उभार को भारत को एक चुनौती के बजाय एक ऐतिहासिक अवसर के रूप में देखना चाहिए। नई दिल्ली को काठमांडू के पुराने राजनीतिक दलों के ढर्रे और गुटीय कूटनीति से पूरी तरह बाहर निकलकर वहां की आकांक्षात्मक और परिणाम–उन्मुख नई पीढ़ी के नेतृत्व की प्राथमिकताओं को समझना होगा। यह नया युवा नेतृत्व किसी पुरानी वामपंथी या दक्षिणपंथी विचारधारा से बंधा हुआ नहीं है, बल्कि वह शुद्ध रूप से आर्थिक लाभ, रोजगार और सुशासन को प्राथमिकता देता है। भारत को कूटनीति में बड़े भाई के पारंपरिक वर्चस्ववादी रुख को पूरी तरह त्यागकर संप्रभु समानता के सिद्धांत पर आधारित एक सहयोगी साझेदार के रूप में अपनी कूटनीतिक छवि को पुनर्गठित करना होगा। हिमालयी क्षेत्र में चीन के बढ़ते बुनियादी ढांचे के प्रभाव का मुकाबला करने का सबसे प्रभावी और सटीक समाधान केवल उसका कूटनीतिक विरोध करना नहीं है, बल्कि नेपाल में चल रही भारतीय विकास परियोजनाओं की कार्य–कुशलता को अभूतपूर्व रूप से बढ़ाना है। अतीत में भारत की कई परियोजनाएं (जैसे पंचेश्वर बहुउद्देशीय परियोजना) प्रशासनिक लालफीताशाही और बजटीय सुस्ती के कारण दशकों तक लटकी रहीं, जिसने नेपाल में भारत की कूटनीतिक विश्वसनीयता को कमजोर किया और चीन को अपनी परियोजनाओं के माध्यम से पैठ बनाने का अवसर दिया। भविष्य की राह यह मांग करती है कि भारत नेपाल में चल रही अपनी सभी अवसंरचना, रेलवे (जैसे जयनगर–बर्दीबास विस्तार) और एकीकृत चेक पोस्ट की परियोजनाओं को एक सख्त समय–सीमा के भीतर पूरा करे। कार्य–कुशलता और पारदर्शिता ही भारत की सबसे बड़ी कूटनीतिक ताकत बनेगी।

द्विपक्षीय संबंधों में लंबे समय से तनाव का कारण बनी 1950 की शांति और मित्रता संधि में समय के अनुकूल संशोधन करना दोनों देशों के दीर्घकालिक रणनीतिक हितों में है। प्रबुद्ध व्यक्ति समूह (EPG) द्वारा तैयार की गई संयुक्त रिपोर्ट पर भारत को अत्यधिक सुरक्षात्मक संकोच को छोड़कर नेपाल के साथ एक खुली और सकारात्मक चर्चा शुरू करनी चाहिए। खुली सीमा के प्रबंधन, नागरिकों के अधिकारों और राष्ट्रीय सुरक्षा के संवेदनशील पहलुओं को ध्यान में रखते हुए एक नया, आधुनिक और पारदर्शी कूटनीतिक समझौता तैयार किया जाना चाहिए। ऐसा करने से न केवल नेपाल के भीतर भारत–विरोधी राष्ट्रवाद के राजनीतिक कार्ड को हमेशा के लिए समाप्त किया जा सकेगा, बल्कि द्विपक्षीय संबंधों को एक नया और आधुनिक विधिक आधार भी प्राप्त होगा।

भविष्य की आर्थिक अंतर्निर्भरता को मजबूत करने के लिए जल–विद्युत ऊर्जा व्यापार को एक व्यापक रणनीतिक हथियार के रूप में विकसित करना होगा। नेपाल से अगले 10 वर्षों में 10,000 मेगावाट बिजली आयात करने के समझौते को धरातल पर उतारने के लिए ट्रांसमिशन लाइनों का तेजी से आधुनिकीकरण करना आवश्यक है। इसके साथ ही, भारत को उप–क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के लिए बांग्लादेश के साथ हुए त्रिपक्षीय बिजली व्यापार मॉडल को और अधिक सुदृढ़ करना चाहिए। डिजिटल मोर्चे पर, UPI और FonePay के सफल फिनटेक एकीकरण को सीमावर्ती क्षेत्रों के छोटे व्यापारियों तक विस्तारित किया जाना चाहिए ताकि औपचारिक अर्थव्यवस्था को मजबूती मिले और दोनों देशों के बीच अनौपचारिक बैंकिंग माध्यमों व जाली मुद्रा की तस्करी जैसी सुरक्षा चुनौतियों को पूरी तरह समाप्त किया जा सके।

भारत और नेपाल की खुली सीमा दोनों देशों की साझी संस्कृति की आत्मा है, लेकिन इसकी सुरक्षा संप्रभुता के लिए अनिवार्य है। भविष्य की रणनीति सीमा को बंद करने की नहीं, बल्कि आधुनिक तकनीकों (जैसे बायोमेट्रिक ट्रैकिंग, सीसीटीवी ग्रिड और संयुक्त सीमा गश्ती) के माध्यम से इसे श्स्मार्ट और सुरक्षित सीमा (Smart Border Management) में बदलने की होनी चाहिए। इसके साथ ही, भारत को नेपाल के सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों में उच्च प्रभाव वाले सामुदायिक विकास परियोजनाओं (HICDP) का दायरा बढ़ाना चाहिए। रामायण सर्किट (अयोध्या–जनकपुर) और बौद्ध सर्किट (लुम्बिनी–बोधगया) के साझा पर्यटन विकास के माध्यम से दोनों देशों की नई पीढ़ी के बीच सांस्कृतिक और भावनात्मक जुड़ाव को और अधिक गहरा किया जा सकता है, जो किसी भी भू–राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के सामने सबसे मजबूत सुरक्षा कवच सिद्ध होगा।

निष्कर्ष

उपरोक्त सभी समकालीन राजनीतिक बदलावों, सामरिक चुनौतियों, आर्थिक सहयोग के नए आयामों और भू–राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के गहन विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारत और नेपाल के संबंध वर्तमान

में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी दौर से गुजर रहे हैं। नेपाल की आंतरिक राजनीति में पारंपरिक विचारधाराओं का कमजोर होना और एक नई, यथार्थवादी पीढ़ी का सत्ता में आना कूटनीतिक संबंधों को पुराने ढर्रे से निकालकर एक नए व्यावहारिक धरातल पर लाने का ऐतिहासिक अवसर प्रदान करता है। यद्यपि कालापानी–लिपुलेख का सीमा विवाद, 1950 की संधि का मुद्दा और चीनी निवेश की रणनीतिक चुनौतियाँ द्विपक्षीय संबंधों में निरंतर तनाव पैदा करती हैं, लेकिन इन बाधाओं के बावजूद दोनों देशों के बीच अंतर्निहित सहयोग की संभावनाएं असीमित हैं। जल–विद्युत ऊर्जा का बढ़ता व्यापार, फिनटेक एकीकरण और भौतिक संपर्कों का सुदृढ़ीकरण यह साबित करता है कि दोनों राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति एक–दूसरे से गहराई से जुड़ी हुई है। भारत को अपनी 'नेबरहुड फर्स्ट' नीति के तहत नेपाल की संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता का पूर्ण सम्मान करते हुए, एक बड़े भाई के बजाय एक समान और संवेदनशील साझेदार के रूप में अपनी भूमिका को निभाना होगा। यदि दोनों देश परिपक्वता, निरंतर संवाद और पारस्परिक लाभ के सिद्धांतों पर मजबूती से आगे बढ़ते हैं, तो भारत–नेपाल संबंध आने वाले समय में न केवल हिमालयी उप–क्षेत्र में शांति और स्थिरता को स्थायी बनाए रखेंगे, बल्कि पूरे दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग और साझा समृद्धि का एक सर्वश्रेष्ठ व अनुकरणीय मॉडल सिद्ध होंगे।

संदर्भ सूची

1. Misra, K. N. (2024). *Impact of Border proximity in regional development in Reference to Indo-Nepal border*. Educational Administration Theory and Practice, 30((2)), 1960–1966. https://doi.org/10.53555/kuey.v30i2.10223
2. Klein, A. M., & Nitschke, J. (2026, March 11). *General election in Nepal Review of General election in Nepal*. www.Kas.De. https://www.kas.de/en/country-reports/detail/-/content/general-election-in-nepal
3. Kumar, J. (2024). *India Nepal border disputes & the kalapani issue Review of India nepal border disputes & the kalapani issue*. Vifindia.Org. https://www.vifindia.org/print/13197
4. Hari Prasad Shrestha. (2017, October 12). *Nepal India eminent persons' group (EPG)- burdened with tough assignments*. South Asia Journal. https://southasiajournal.net/post/commentary/10016/nepal-india-eminent-persons-group-epg-burdened-with-tough-assignments
5. Bhattarai, G. (2022). *Nepal between China and India: Difficulty of being neutral*. Springer Nature.
6. ANI. (2024, January 4). *Nepal inks long-term power deal with India, to sell 10,000 MW electricity over 10 years*. The Times of India; Times Of India. https://timesofindia.indiatimes.com/business/india-business/nepal-inks-long-term-power-deal-with-india-to-sell-10000-mw-electricity-over-10-years/articleshow/106544732.cms
7. Bureau, T. H. (2024, February 15). *India, Nepal sign pact to link UPI, NPI for faster remittances*. The Hindu. https://www.thehindu.com/business/india-nepal-sign-pact-to-link-upi-npi-for-faster-remittances/article67849371.ece
8. Misra, S. (2025). *Paradigm Shift of Religious Tourism in South Asia*. In Geo-economics in South Asian Environment (pp. 23-46).

मगध की पारम्परिक विरासत एवं सांस्कृतिक पहचान : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. सरोज कुमार*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन '' मगध की पारम्परिक विरासत एवं सांस्कृतिक पहचान : एक ऐतिहासिक अध्ययन' का अध्ययन है। मगध भारतीय इतिहास की उन महान सभ्यताओं में से एक है जिसने न केवल भारत, बल्कि सम्पूर्ण एशिया की सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक परम्पराओं को गहराई से प्रभावित किया। वैदिक काल से लेकर मौर्य, शुंग, गुप्त तथा पाल शासकों के शासनकाल तक मगध भारतीय सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा। राजगृह, पाटलिपुत्र, नालंदा, विक्रमशिला, बोधगया और गया जैसे ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों ने इसे वैश्विक सांस्कृतिक धरोहर का स्वरूप प्रदान किया। मगध की पारम्परिक विरासत केवल उसके स्मारकों और पुरातात्त्विक अवशेषों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी लोकसंस्कृति, लोककला, लोकभाषा (मगही), लोकसंगीत, धार्मिक सहिष्णुता, उत्सव, मेले, हस्तशिल्प तथा सामाजिक जीवन–पद्धति में भी निहित है।

वर्तमान वैश्वीकरण, नगरीकरण तथा तकनीकी आधुनिकीकरण के कारण मगध की अनेक पारम्परिक सांस्कृतिक धरोहरें संकट का सामना कर रही हैं। ऐसे में इन विरासतों के संरक्षण, संवर्धन तथा सतत विकास की दिशा में गंभीर ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध लेख में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से मगध की पारम्परिक विरासत, सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक संरचना तथा वर्तमान संरक्षण प्रयासों का समग्र अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द : मगध, पारम्परिक विरासत, सांस्कृतिक पहचान, नालंदा, राजगीर, बोधगया, मगही संस्कृति, पुरातात्त्विक धरोहर, लोकसंस्कृति, ऐतिहासिक विरासत।

प्रस्तावना

मगध भारतीय इतिहास और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है, जिसने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक भारतीय सभ्यता के निर्माण में विशिष्ट योगदान दिया है। वर्तमान बिहार के दक्षिणी एवं मध्य भागों में स्थित मगध क्षेत्र प्राचीन भारत के सोलह महाजनपदों में सबसे शक्तिशाली महाजनपद के रूप में विकसित हुआ। हर्यक, शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, कण्व, गुप्त तथा पाल वंशों के शासनकाल में मगध राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बना रहा।

मगध की भूमि भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, सम्राट अशोक, चाणक्य तथा आर्यभट्ट जैसी महान विभूतियों की कर्मभूमि रही है। राजगृह, पाटलिपुत्र, नालंदा, विक्रमशिला, गया एवं बोधगया जैसे ऐतिहासिक और धार्मिक स्थल इसकी समृद्ध विरासत के प्रतीक हैं। विशेष रूप से नालंदा विश्वविद्यालय ने प्राचीन भारत को विश्व शिक्षा के मानचित्र पर स्थापित किया, जहाँ चीन, कोरिया, तिब्बत, जापान और दक्षिण–पूर्व एशिया से विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे।

मगध की सांस्कृतिक पहचान केवल उसके ऐतिहासिक स्मारकों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी लोकभाषा (मगही), लोकगीत, लोकनृत्य, पारंपरिक रीति–रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान, मेले, पर्व–त्योहार, हस्तशिल्प और सामाजिक जीवन में भी समाहित है।[1] यहाँ की संस्कृति में हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा लोक परंपराओं का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है, जो इसे भारतीय सांस्कृतिक एकता का उत्कृष्ट उदाहरण बनाता है।

वर्तमान समय में वैश्वीकरण, शहरीकरण और आधुनिक जीवन शैली के प्रभाव से पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है। ऐसी स्थिति में मगध की पारम्परिक विरासत और सांस्कृतिक पहचान का अध्ययन न केवल इतिहास की समझ को समृद्ध करता है, बल्कि सांस्कृतिक संरक्षण, पर्यटन विकास और क्षेत्रीय अस्मिता के सुदृढ़ीकरण में भी सहायक सिद्ध होता है।[2]

* सहायक प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, एस0 के0 एम0 कॉलेज, नवादा, बिहार– मगध विश्वविद्यालय, बोधगया Mob No. : 678266109, E-mail id : sarojkumar75566@gmail.com

पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक विरासत : मगध का इतिहास लगभग 2500 वर्षों से अधिक पुराना है। यहाँ अनेक पुरातात्त्विक स्थल स्थित हैं, जो इसकी ऐतिहासिक समृद्धि को प्रमाणित करते हैं। राजगीर, नालंदा, पाटलिपुत्र तथा बोधगया जैसे स्थलों के अवशेष प्राचीन भारत की उन्नत सभ्यता और संस्कृति के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। नालंदा विश्वविद्यालय के भग्नावशेष विश्व के प्राचीनतम आवासीय विश्वविद्यालयों में से एक की गौरवशाली परंपरा को दर्शाते हैं।[3]

सारणी 1 : मगध के प्रमुख पुरातात्त्विक स्थल एवं उनका महत्व

क्रम	स्थल	जिला	ऐतिहासिक महत्व
1	राजगीर	नलंदा	मगध की प्रथम राजधानी
2	नालंदा विश्वविद्यालय	नलंदा	विश्व प्रसिद्ध प्राचीन शिक्षा केन्द्र
3	बोधगया	गया	बुद्धत्व प्राप्ति स्थल
4	पाटलिपुत्र (पटना)	पटना	मौर्य एवं गुप्त साम्राज्य की राजधानी
5	बराबर गुफाएँ	जहानाबाद	भारत की प्राचीनतम शैलकृत गुफाएँ
6	विष्णुपद मंदिर	गया	हिन्दू धार्मिक आस्था का प्रमुख केन्द्र

धार्मिक एवं आध्यात्मिक विरासत : मगध भारत की धार्मिक विविधता और सहिष्णुता का प्रतीक रहा है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म दोनों का विकास इसी क्षेत्र में हुआ। भगवान बुद्ध ने बोधगया में ज्ञान प्राप्त किया तथा राजगीर और नालंदा में अपने उपदेश दिए। भगवान महावीर ने भी मगध क्षेत्र में व्यापक रूप से धर्म प्रचार किया। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान कर उसे अंतरराष्ट्रीय स्वरूप दिया। आज बोधगया विश्व के प्रमुख बौद्ध तीर्थस्थलों में सम्मिलित है, जहाँ प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु आते हैं।

शैक्षिक एवं बौद्धिक विरासत : मगध प्राचीन काल से ज्ञान और शिक्षा का केन्द्र रहा है। नालंदा विश्वविद्यालय तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालय ने भारतीय ज्ञान परंपरा को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित किया। यहाँ दर्शन, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष, व्याकरण तथा बौद्ध अध्ययन के उच्च स्तर के शिक्षण की व्यवस्था थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग और इत्सिंग ने नालंदा की शैक्षणिक उत्कृष्टता का विस्तृत वर्णन किया है। यह विरासत आज भी भारत की बौद्धिक पहचान का महत्वपूर्ण अंग है।[4]

लोकभाषा एवं साहित्यिक विरासत : मगध की सांस्कृतिक पहचान में मगही भाषा का विशेष स्थान है। मगही भारत की प्राचीन जनभाषाओं में से एक है, जिसकी जड़ें मागधी प्राकृत में निहित हैं। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें एवं लोकनाट्य इस भाषा को समृद्ध बनाते हैं।

मगही साहित्य ग्रामीण जीवन, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करता है। विवाह गीत, सोहर, कजरी, झूमर तथा फगुआ गीत इसकी सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाते हैं।

सारणी 3 : मगध की प्रमुख लोक–सांस्कृतिक परंपराएँ

परंपरा	स्वरूप	सांस्कृतिक महत्व
सोहर	जन्म गीत	सामाजिक उत्सव
कजरी	वर्षा ऋतु गीत	लोकभावना की अभिव्यक्ति
फगुआ	होली गीत	सामुदायिक एकता
झूमर	लोकनृत्य	सांस्कृतिक मनोरंजन
लोककथा	मौखिक परंपरा	सांस्कृतिक संरक्षण

पर्व, मेले एवं लोक उत्सव : मगध क्षेत्र के पर्व और मेले इसकी सांस्कृतिक पहचान के महत्वपूर्ण अंग हैं। छठ पर्व, पितृपक्ष मेला, मलमास मेला, बुद्ध पूर्णिमा तथा सरस्वती पूजा यहाँ के प्रमुख सांस्कृतिक आयोजन हैं। गया में आयोजित पितृपक्ष मेला विश्व के सबसे बड़े धार्मिक आयोजनों में से एक माना जाता है। राजगीर का मलमास मेला और बोधगया का बौद्ध महोत्सव सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देते हैं।

सारणी 3 : प्रमुख पर्व एवं मेले

पर्व/मेला	स्थान	महत्व
पितृपक्ष मेला	गया	पिंडदान एवं श्राद्ध संस्कार

बुद्ध पूर्णिमा	बोधगया	बुद्ध जयंती समारोह
मलमास मेला	राजगीर	धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजन
छठ पर्व	सम्पूर्ण मगध	सूर्योपासना
मकर संक्रांति	गया एवं राजगीर	सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव

स्थापत्य कला एवं सांस्कृतिक धरोहर : मगध की स्थापत्य कला भारतीय वास्तुकला के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। मौर्यकालीन स्तंभ, स्तूप, विहार, मंदिर और गुफाएँ इसकी उत्कृष्ट कला परंपरा को प्रदर्शित करते हैं। अशोक स्तंभ, महाबोधि मंदिर, नालंदा के विहार तथा बराबर गुफाएँ स्थापत्य कला की दृष्टि से अद्वितीय हैं।

सारणी 4 : स्थापत्य एवं सांस्कृतिक धरोहर

धरोहर	काल	विशेषता
महाबोधि मंदिर	गुप्तकालीन विकास	यूनेस्को विश्व धरोहर
नालंदा महाविहार	गुप्त–पाल काल	विश्व प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र
बराबर गुफाएँ	मौर्यकाल	शैलकृत वास्तुकला
अशोक स्तंभ	मौर्यकाल	बौद्ध धर्म प्रचार का प्रतीक
राजगीर दुर्ग	प्राचीन काल	ऐतिहासिक एवं सामरिक महत्व

सांस्कृतिक पहचान और समकालीन चुनौतियाँ : मगध की सांस्कृतिक पहचान उसकी ऐतिहासिक विरासत, धार्मिक सहिष्णुता, लोक परंपराओं तथा सामाजिक समन्वय पर आधारित है। किन्तु वर्तमान समय में शहरीकरण, वैश्वीकरण, पारंपरिक कलाओं के प्रति घटती रुचि, सांस्कृतिक व्यवसायीकरण तथा संरक्षण की अपर्याप्त नीतियाँ इसकी विरासत के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु स्थानीय समुदायों की सहभागिता, सांस्कृतिक शिक्षा, विरासत पर्यटन, डिजिटल अभिलेखीकरण तथा सरकारी संरक्षण योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू करने की आवश्यकता है।

साहित्य समीक्षा

अमित रंजन (2024) रंजन ने 'श्री प्रथमशिवपुर महाविहार : तेलहारा (मगध) के उत्खनन (2020–2022)' पर आधारित अध्ययन में मगध क्षेत्र की बौद्ध पुरातात्त्विक विरासत का विस्तृत विश्लेषण किया है। अध्ययन में नवीन उत्खननों के आधार पर महाविहार की स्थापत्य कला, मूर्तिकला, अभिलेखीय साक्ष्य तथा सांस्कृतिक निरंतरता को स्पष्ट किया गया है। शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया कि तेलहारा महाविहार नालंदा एवं विक्रमशिला की भाँति अंतरराष्ट्रीय बौद्ध शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था।[5]

आकाश पाण्डेय, सुष्मिता सेना एवं राहुल मौर्य (2024) मुंगेर (प्राचीन मुद्गगिरि) में प्राप्त नवीन मूर्तिकला एवं अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर पालकालीन मगध की सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक संरचना का विश्लेषण किया। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया कि पालकालीन मगध कला, धर्म और प्रशासन का महत्वपूर्ण केन्द्र था।[6]

संजुक्ता दत्ता (2024) ने हिमालय एवं ट्रांस–हिमालय क्षेत्रों के साथ मगध के सांस्कृतिक एवं बौद्ध सम्पर्कों का ऐतिहासिक अध्ययन किया। अध्ययन में यह बताया गया कि पाँचवीं से पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य मगध अंतरराष्ट्रीय बौद्ध तीर्थ, शिक्षा तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान का प्रमुख केन्द्र था।[7]

निशांत नयन (2024) नयन ने गया जी के इतिहास को पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर विश्लेषित करते हुए स्पष्ट किया कि गया और सम्पूर्ण मगध की सांस्कृतिक पहचान पुरातात्त्विक अवशेषों, धार्मिक परम्पराओं तथा ऐतिहासिक स्मारकों के माध्यम से निरंतर विकसित हुई है। शोध में सांस्कृतिक विरासत संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है।[8]

तोषा मल्लिका एवं राजीव रंजन द्विवेदी (2024) मल्लिका एवं रंजन ने बिहार की लोकसंस्कृति एवं प्राचीन लोकपरम्पराओं का विश्लेषण करते हुए बताया कि लोकविश्वास, लोककथाएँ और पारम्परिक सांस्कृतिक व्यवहार आज भी मगध की सांस्कृतिक पहचान का आधार हैं।[9]

अमित उराँव एवं मनोज कुमार सिन्हा (2024) उराँव एवं सिन्हा ने बिहार की पांडुलिपि विरासत के संरक्षण पर अध्ययन करते हुए बताया कि पारम्परिक ज्ञान, संस्कृति एवं इतिहास के संरक्षण में पांडुलिपियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अध्ययन में राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन के योगदान का मूल्यांकन किया गया।[10]

विश्वनाथ प्रसाद (2012) प्रसाद ने मगही संस्कार गीत का अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि मगध की लोकसंस्कृति, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान का सबसे सशक्त माध्यम लोकगीत हैं। उन्होंने जन्म, विवाह एवं धार्मिक संस्कारों से जुड़े गीतों का सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत किया।[11]

रामप्रसाद सिंह (2008) सिंह ने मगही लोकगीतों एवं लोकसाहित्य का अध्ययन करते हुए बताया कि लोकपरम्पराएँ मगध की सांस्कृतिक पहचान का जीवंत स्रोत हैं तथा इनके संरक्षण से क्षेत्रीय संस्कृति को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।[12]

हीरानन्द शास्त्री (1931) शास्त्री ने नालंदा महाविहार के व्यवस्थित उत्खनन के आधार पर उसकी स्थापत्य संरचना, विहारों, स्तूपों तथा सांस्कृतिक विकास का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया। उनका कार्य आज भी नालंदा अध्ययन का आधारभूत स्रोत माना जाता है।[13]

अलेक्जेंडर कनिंघम (1871) कनिंघम ने राजगीर, नालंदा, गया तथा पाटलिपुत्र का सर्वेक्षण कर इन स्थलों की ऐतिहासिक पहचान स्थापित की। उनके सर्वेक्षण ने मगध की प्राचीन विरासत के वैज्ञानिक अध्ययन की आधारशिला रखी।[14]

उद्देश्य

1. मगध की पारम्परिक विरासत के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना।
2. मगध की सांस्कृतिक पहचान के प्रमुख घटकोंकृधार्मिक, सामाजिक, भाषाई एवं कलात्मक परम्पराओंकृका विश्लेषण करना।
3. मगध के प्रमुख पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक स्थलों के सांस्कृतिक महत्व का मूल्यांकन करना।
4. मगध की लोकसंस्कृति, लोकभाषा (मगही), लोककला एवं लोकसाहित्य के संरक्षण की स्थिति का अध्ययन करना।
5. वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के प्रभावों का मगध की सांस्कृतिक विरासत पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना।

परिकल्पना

1. मगध की पारम्परिक विरासत एवं सांस्कृतिक पहचान का वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यटन विकास पर महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
2. मगध के पुरातात्त्विक एवं धार्मिक स्थल क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
3. लोकभाषा, लोककला एवं लोकपरम्पराएँ मगध की सांस्कृतिक निरन्तरता की प्रमुख आधारशिला हैं।
4. वैश्वीकरण एवं शहरीकरण के कारण मगध की पारम्परिक सांस्कृतिक विरासत के समक्ष नई चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं।

विश्लेषण : मगध की पारम्परिक विरासत का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि यह क्षेत्र केवल राजनीतिक इतिहास का केन्द्र नहीं रहा, बल्कि भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा तथा दर्शन का उद्गम स्थल भी रहा है। राजगृह, पाटलिपुत्र, नालंदा, बोधगया तथा गया जैसे ऐतिहासिक स्थल इसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के सशक्त प्रमाण हैं। इन स्थलों ने भारतीय संस्कृति को वैश्विक पहचान प्रदान की।

धार्मिक दृष्टि से मगध बौद्ध, जैन तथा हिन्दू परम्पराओं का समन्वयकारी केन्द्र रहा है। भगवान बुद्ध का ज्ञान प्राप्ति स्थल बोधगया तथा भगवान महावीर की कर्मभूमि होने के कारण यह क्षेत्र धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। भाषाई एवं साहित्यिक दृष्टि से मगही भाषा और लोकसाहित्य ने क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें तथा लोकनृत्य आज भी ग्रामीण समाज में सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाए हुए हैं।

आर्थिक एवं पर्यटन की दृष्टि से भी मगध की सांस्कृतिक विरासत अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बोधगया, राजगीर, नालंदा तथा गया जैसे विश्वविख्यात धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थल प्रतिवर्ष लाखों देशी–विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करते हैं, जिससे स्थानीय रोजगार, हस्तशिल्प एवं पर्यटन उद्योग को बढ़ावा मिलता है।

यद्यपि वर्तमान समय में शहरीकरण, आधुनिकीकरण, पर्यावरणीय क्षरण तथा पारम्परिक ज्ञान के लुप्त होने जैसी चुनौतियाँ विरासत संरक्षण के समक्ष उपस्थित हैं, फिर भी डिजिटल अभिलेखीकरण, यूनेस्को धरोहर

संरक्षण, सामुदायिक सहभागिता एवं सरकारी संरक्षण योजनाओं के माध्यम से इन धरोहरों को सुरक्षित रखने के प्रयास किए जा रहे हैं।

निष्कर्ष : मगध भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का एक ऐसा केन्द्र रहा है जिसने भारतीय इतिहास को नई दिशा प्रदान की। यहाँ विकसित धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं ने सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया। नालंदा, बोधगया, राजगीर, गया तथा पाटलिपुत्र जैसे केन्द्र आज भी भारतीय सांस्कृतिक गौरव के प्रतीक हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मगध की सांस्कृतिक पहचान केवल ऐतिहासिक स्मारकों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी लोकभाषा, लोकसाहित्य, लोककला, धार्मिक परम्पराएँ, सामाजिक रीति–रिवाज तथा सामुदायिक जीवन में भी विद्यमान है। यही तत्व इसकी सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाए रखते हैं।

वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण को केवल सरकारी दायित्व न मानकर स्थानीय समुदाय, शिक्षण संस्थानों, शोधकर्ताओं तथा पर्यटन विभाग की सहभागिता से इसे एक जन आन्दोलन का रूप दिया जाए। डिजिटल संरक्षण, सांस्कृतिक शिक्षा, विरासत पर्यटन, स्थानीय कलाकारों के प्रोत्साहन तथा पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण द्वारा मगध की सांस्कृतिक पहचान को भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. मिश्र, कैलाश कुमार (2020) बिहार : एक सांस्कृतिक परिचय, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, पृ0 69
2. उपाध्याय, वासुदेव (2016) प्राचीन भारतीय संस्कृति, प्रयागराज, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृ0 88
3. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद (2014) प्राचीन भारत का इतिहास, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ0 103
4. कुमार, ब्रजदुलाल (2019) बिहार का इतिहास एवं संस्कृति, पटना, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ0 133
5. रंजन, अमित (2024) श्री प्रथमशिवपुर महाविहार : तेलहारा (मगध) के उत्खनन (2020–022) बिहार हेरिटेज डेवलपमेंट सोसाइटी, कला, संस्कृति एवं युवा विभाग, बिहार सरकार।
6. पाण्डेय, आकाश, सेना, सुष्मिता, एवं मौर्य, राहुल (2024) मुद्गगिरि (मुंगेर) के नवीन पुरातात्त्विक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों का अध्ययन, साउथ एशियन स्टडीज, 40(2), 121–143.
7. दत्ता, संजुक्ता (2024) बौद्ध हृदयस्थल से हिमालय एवं ट्रांस–हिमालय क्षेत्रों के साथ मगध के सांस्कृतिक सम्बन्ध, यूरोपियन बुलेटिन ऑफ हिमालयन रिसर्च, पृ0 62
8. नयन, निशांत (2024) गयाजी का इतिहास एवं पुरातात्त्विक साक्ष्य बिहार शोध समागम, 2(4)
9. मल्लिका, तोषा, एवं द्विवेदी, राजीव रंजन (2024) बिहार की प्राचीन लोकसंस्कृति एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ, क्लासिकल लिटरेचर, 2(1), 6–14.
10. उराँव, अमित, एवं सिन्हा, मनोज कुमार (2024) बिहार की पांडुलिपि विरासत एवं राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन की भूमिका, इंडियन जर्नल ऑफ इन्फॉर्मेशन, लाइब्रेरी एंड सोसाइटी, 14(1), 15–19
11. प्रसाद, विश्वनाथ (2012) मगही संस्कार गीत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ0 28
12. सिंह, रामप्रसाद (2008) वृहद मगही लोकगीत संग्रह, मगही अकादमी, पटना, पृ0 112
13. शास्त्री, हीरानन्द (1931) नालंदा एवं उसके पुरातात्त्विक अवशेष, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, पृ0 59
14. कनिंघम, अलेक्जेंडर (1871) भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण प्रतिवेदन (प्रथम भाग) भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, कलकत्ता, पृ0 141

VB-G RAM G के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण का मूल्यांकन

डॉ. सुषमा*

सारांश

ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण समावेशी विकास की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ कृषि, घरेलू कार्य, पशुपालन, लघु उद्योग तथा असंगठित क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, परंतु लंबे समय तक उन्हें रोजगार सुरक्षा, वित्तीय संसाधनों और निर्णय लेने की प्रक्रिया में सीमित अवसर प्राप्त रहे हैं। VB-G RAM G (Viksit Bharat–Guarantee for Rozgar and Aajeevika Mission Gramin) जैसी पहल का उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को रोजगार, आजीविका के अवसर, कौशल विकास और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना है। प्रस्तुत शोध लेख में VB-G RAM G के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण का मूल्यांकन किया गया है। अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर रोजगार उपलब्धता, आय वृद्धि, स्वयं सहायता समूहों की भूमिका, वित्तीय समावेशन, कौशल विकास और सामाजिक भागीदारी का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रोजगार गारंटी एवं आजीविका आधारित कार्यक्रमों ने ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक निर्भरता को कम करने, आत्मविश्वास बढ़ाने और सामाजिक निर्णयों में भागीदारी को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

Keywords: VB-G RAM G, ग्रामीण महिला, सामाजिक सशक्तिकरण, आर्थिक सशक्तिकरण, रोजगार, आजीविका सुरक्षा, स्वयं सहायता समूह।

1. प्रस्तावना

भारत की लगभग 65 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जहाँ कृषि और उससे संबंधित गतिविधियाँ आजीविका का प्रमुख आधार हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे कृषि कार्य, पशुपालन, वानिकी, जल संरक्षण, खाद्य प्रसंस्करण, कुटीर उद्योग तथा परिवार के आर्थिक प्रबंधन में सक्रिय योगदान देती हैं। इसके बावजूद ग्रामीण महिलाओं को लंबे समय तक असंगठित श्रम, कम मजदूरी, सीमित रोजगार अवसर, वित्तीय संसाधनों तक अपर्याप्त पहुँच, कौशल की कमी तथा सामाजिक असमानताओं जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। इन्हीं चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2026 से विकसित भारत–गारंटी फॉर रोजगार एवं आजीविका मिशन (ग्रामीण) [VB-G RAM G] को लागू किया, जिसका उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को रोजगार सुरक्षा के साथ-साथ स्थायी आजीविका, कौशल विकास और समावेशी ग्रामीण विकास सुनिश्चित करना है। उपलब्ध आधिकारिक जानकारी के अनुसार इस मिशन के अंतर्गत प्रत्येक पात्र ग्रामीण परिवार को प्रतिवर्ष 125 दिनों के रोजगार की वैधानिक गारंटी प्रदान की गई है, जो पूर्व व्यवस्था के 100 दिनों की तुलना में 25 प्रतिशत अधिक है। साथ ही ग्रामीण अवसंरचना, प्राकृतिक संसाधन संरक्षण, जल प्रबंधन, कृषि उत्पादकता और आजीविका संवर्धन के लिए लगभग ₹7.5 लाख करोड़ के व्यापक ग्रामीण विकास निवेश का प्रावधान किया गया है। महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाने के उद्देश्य से मजदूरी दरों में औसतन 10 प्रतिशत से अधिक वृद्धि किए जाने की भी घोषणा की गई है, जिससे ग्रामीण महिला श्रमिकों की आय, बचत क्षमता तथा परिवार की आर्थिक सुरक्षा में सुधार की अपेक्षा की जा रही है। योजना के कार्यान्वयन में डिजिटल जॉब कार्ड, ई-केवाईसी, पारदर्शी भुगतान प्रणाली, सामाजिक अंकेक्षण तथा तकनीक-आधारित निगरानी व्यवस्था को शामिल किया गया है, जिससे महिलाओं को समय पर भुगतान, वित्तीय समावेशन तथा बैंकिंग सेवाओं तक बेहतर पहुँच प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त योजना में नियमित रोजगार एवं आय प्राप्त होने से महिलाओं की पारिवारिक निर्णय-प्रक्रिया में भागीदारी, बच्चों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर व्यय, पोषण स्तर, वित्तीय आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होने की संभावना है। इस प्रकार VB-G RAM G केवल एक रोजगार कार्यक्रम नहीं, बल्कि ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण, सामाजिक समावेशन, लैंगिक समानता तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण भारत के निर्माण की दिशा में एक व्यापक विकासात्मक पहल के रूप में उभरता है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन "VB-G RAM G के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण का मूल्यांकन" विषय पर आधारित है। इस शोध में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति (Descriptive and Analytical

* Asst. Professor, R.V. Higher Education & Technical Institute, Dadri, Greater Noida near Shiv Nadar (HCL University) Gautam Buddha Nagar UP - 203207

Research Method) का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य VB-G RAM G के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के रोजगार, आय वृद्धि, आजीविका सुरक्षा, वित्तीय समावेशन और सामाजिक भागीदारी में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करना है।

इस शोध में मुख्य रूप से द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। अध्ययन के लिए भारत सरकार की रिपोर्ट, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नीति आयोग, NABARD, कौशल विकास मंत्रालय, आर्थिक सर्वेक्षण, शोध पत्रों एवं संबंधित पुस्तकों का उपयोग किया गया है। अध्ययन में महिला रोजगार, स्वयं सहायता समूह (SHGs), कौशल विकास, महिला उद्यमिता और सामाजिक परिवर्तन जैसे प्रमुख पहलुओं का विश्लेषण किया गया है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण आजीविका के क्षेत्र में अनेक अध्ययनों ने रोजगार एवं वित्तीय समावेशन की भूमिका को महत्वपूर्ण बताया है।

I. **कुमार (2019)**[1] ने अपनी पुस्तक *Rural Development and Women Empowerment* में बताया कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं को बचत, ऋण और स्वरोजगार के अवसर देकर आर्थिक रूप से मजबूत बनाते हैं।

II. **सिंह (2018)**[2] के अनुसार महिला आर्थिक भागीदारी सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण आधार है। रोजगार और कौशल विकास से महिलाओं की निर्णय क्षमता और सामाजिक स्थिति में सुधार होता है।

III. **NITI Aayog (2025)**[3] की रिपोर्ट के अनुसार महिला नेतृत्व आधारित विकास विकसित भारत के लक्ष्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है। महिलाओं की आर्थिक भागीदारी बढ़ने से समावेशी विकास को गति मिलती है।

IV. **Ministry of Rural Development (2025)**[4] की रिपोर्ट में बताया गया है कि आजीविका मिशनों और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से करोड़ों ग्रामीण महिलाओं को रोजगार, बैंकिंग सुविधा और उद्यमिता के अवसर प्राप्त हुए हैं।

V. **NABARD (2025)** की रिपोर्ट के अनुसार SHG आधारित वित्तीय मॉडल ने ग्रामीण महिलाओं की बचत क्षमता, ऋण पहुँच और छोटे व्यवसायों को बढ़ावा दिया है।[5]

इस प्रकार साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि VB-G RAM G जैसी रोजगार एवं आजीविका आधारित पहलें ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक पहचान और समग्र सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

2. VB-G RAM G की अवधारणा एवं उद्देश्य

VB-G RAM G ग्रामीण विकास और रोजगार सुरक्षा को मजबूत करने वाली एक पहल है, जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाना तथा आजीविका के स्थायी साधन विकसित करना है। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- ग्रामीण परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराना।
- महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना।
- कौशल विकास एवं स्वरोजगार को बढ़ावा देना।
- स्वयं सहायता समूहों को मजबूत करना।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना।
- सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को कम करना।

ग्रामीण विकास मंत्रालय की विभिन्न आजीविका योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों, बैंकिंग सेवाओं और उद्यमिता गतिविधियों से जोड़ा गया है। DAY-NRLM के अंतर्गत वर्ष 2024–25 तक लगभग 9 करोड़ से अधिक ग्रामीण महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों से जोड़ा गया है।[6]

3. ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण पर प्रभाव

VB-G RAM G का सबसे प्रमुख प्रभाव महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार के रूप में देखा जा सकता है। ग्रामीण महिलाओं के लिए रोजगार उपलब्ध होने से उनकी आय में वृद्धि होती है और परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ पहले मुख्य रूप से मौसमी रोजगार और कृषि आधारित कार्यों पर निर्भर थीं। रोजगार गारंटी और आजीविका कार्यक्रमों ने उन्हें नियमित आय के अवसर प्रदान किए हैं।

आर्थिक सशक्तिकरण के प्रमुख प्रभाव—

(i) आय में वृद्धि

VB-G RAM G के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को नियमित रोजगार मिलने से उनकी आय में वृद्धि हुई है, जिससे परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। उपलब्ध सरकारी सूचनाओं के अनुसार, इस मिशन के अंतर्गत पात्र ग्रामीण परिवारों को प्रतिवर्ष 125 दिनों के रोजगार की गारंटी तथा मजदूरी दरों में लगभग 10% की वृद्धि का प्रावधान किया गया है। इससे महिलाओं की नियमित आय बढ़ने के साथ-साथ परिवार के दैनिक खर्च, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण तथा

बचत पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। बढ़ी हुई आय के कारण महिलाएँ आर्थिक रूप से अधिक आत्मनिर्भर बनी हैं तथा परिवार के वित्तीय निर्णयों में उनकी भागीदारी भी पहले की तुलना में अधिक सशक्त हुई है।

(ii) वित्तीय स्वतंत्रता

ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण में वित्तीय स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण आधार है, क्योंकि इससे वे केवल आय अर्जित करने तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि अपनी आर्थिक आवश्यकताओं, बचत, निवेश तथा पारिवारिक निर्णयों में भी सक्रिय भूमिका निभाने लगती हैं। VB-G RAM G के अंतर्गत रोजगार से प्राप्त नियमित आय, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), डिजिटल भुगतान प्रणाली तथा बैंक खातों के माध्यम से मजदूरी का भुगतान महिलाओं को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ने में सहायक सिद्ध हो रहा है। इसके साथ ही स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups–SHGs), बैंकिंग सेवाओं तथा सूक्ष्म वित्त संस्थानों तक पहुँच बढ़ने से महिलाओं में बचत की प्रवृत्ति विकसित हुई है और उन्हें कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध होने लगा है। इससे वे कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, स्वरोजगार तथा अन्य आय-सृजन गतिविधियों में निवेश करने में सक्षम हुई हैं। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की *SHG–Bank Linkage Programme Status Report 2023–24* के अनुसार, देश में लगभग 1.03 करोड़ स्वयं सहायता समूह बैंकिंग प्रणाली से जुड़े हुए हैं, जिनसे लगभग 11 करोड़ ग्रामीण परिवार लाभान्वित हो रहे हैं। इन समूहों की 90 प्रतिशत से अधिक सदस्य महिलाएँ हैं तथा बैंकों द्वारा SHGs को ₹2.60 लाख करोड़ से अधिक का ऋण उपलब्ध कराया गया है। यह आँकड़ा दर्शाता है कि स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण महिलाओं की वित्तीय पहुँच, बचत क्षमता, ऋण उपलब्धता, डिजिटल बैंकिंग और आर्थिक आत्मनिर्भरता को उल्लेखनीय रूप से सुदृढ़ किया है। नियमित आय और वित्तीय सेवाओं तक पहुँच के परिणामस्वरूप महिलाओं की निर्णय-निर्माण क्षमता, परिवार की आर्थिक सुरक्षा तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई है, जिससे वे स्थानीय स्तर पर विकास की सक्रिय भागीदार बन रही हैं।[7]

(iii) महिला उद्यमिता का विकास

रोजगार गारंटी कार्यक्रमों का दीर्घकालिक उद्देश्य केवल मजदूरी आधारित रोजगार उपलब्ध कराना नहीं, बल्कि महिलाओं को स्वरोजगार, सूक्ष्म उद्यमिता तथा स्थानीय आर्थिक गतिविधियों से जोड़कर आत्मनिर्भर बनाना भी है। VB-G RAM G के अंतर्गत कौशल विकास, उद्यमिता प्रशिक्षण, स्वयं सहायता समूहों के सशक्तिकरण, वित्तीय सहायता तथा विपणन सुविधाओं के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को विभिन्न आयवर्धक गतिविधियों में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। वर्तमान समय में ग्रामीण महिलाएँ खाद्य प्रसंस्करण, दुग्ध उत्पादन, डेयरी, बकरी पालन, कुक्कुट पालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, हस्तशिल्प, हथकरघा, जैविक खेती, कृषि उत्पादों के मूल्य संवर्धन, स्थानीय खाद्य उत्पादों के निर्माण तथा डिजिटल विपणन जैसे क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) के अंतर्गत देशभर में 10 करोड़ से अधिक महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों से जुड़ चुकी हैं, जिससे ग्रामीण महिला उद्यमिता को नई गति मिली है। इन महिला समूहों ने लाखों सूक्ष्म उद्यम स्थापित कर स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर सृजित किए हैं तथा परिवार की आय में उल्लेखनीय वृद्धि की है। उद्यमिता के माध्यम से महिलाएँ अब केवल श्रमिक नहीं रहीं, बल्कि उत्पादक, प्रबंधक, निवेशक और सफल उद्यमी के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर रही हैं। इससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होने के साथ-साथ आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता, सामाजिक सम्मान तथा निर्णय लेने की शक्ति में भी वृद्धि हुई है। महिला उद्यमिता का यह विस्तार ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समावेशी विकास, गरीबी उन्मूलन, स्थानीय रोजगार सृजन तथा विकसित भारत के लक्ष्य की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।[8]

4. सामाजिक सशक्तिकरण पर प्रभाव

महिला सशक्तिकरण का सामाजिक पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। VB-G RAM G जैसी योजनाओं से महिलाओं में आत्मविश्वास और सामाजिक पहचान बढ़ी है।

(i) निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि

नियमित आय और आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण ग्रामीण महिलाओं की परिवार में निर्णय लेने की क्षमता बढ़ी है। वे अब बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, बचत तथा घरेलू आर्थिक प्रबंधन से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णयों में सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं। इससे परिवार और समाज में उनकी भूमिका अधिक सशक्त हुई है।

(ii) सामाजिक जागरूकता

VB-G RAM G, स्वयं सहायता समूहों (SHGs) तथा सामुदायिक गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं में सरकारी योजनाओं, कानूनी अधिकारों, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता और वित्तीय साक्षरता के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इससे महिलाओं की सामाजिक भागीदारी, आत्मविश्वास और सामुदायिक नेतृत्व क्षमता में सकारात्मक वृद्धि हुई है।

(iii) नेतृत्व क्षमता का विकास

VB-G RAM G के अंतर्गत समूह आधारित गतिविधियों, स्वयं सहायता समूहों (SHGs), सामुदायिक संगठनों तथा ग्राम स्तरीय समितियों में सक्रिय भागीदारी ने ग्रामीण महिलाओं की नेतृत्व क्षमता को उल्लेखनीय रूप से सुदृढ़ किया है। नियमित बैठकों, सामूहिक निर्णय-निर्माण, वित्तीय प्रबंधन, प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा सामुदायिक विकास गतिविधियों में

सहभागिता के माध्यम से महिलाओं में संवाद कौशल, संगठन क्षमता, समस्या-समाधान की योग्यता तथा निर्णय लेने का आत्मविश्वास विकसित हुआ है। पहले जो महिलाएँ केवल घरेलू कार्यों तक सीमित थीं, वे अब ग्राम सभाओं, पंचायत बैठकों, जल संरक्षण, स्वच्छता, आजीविका विकास तथा सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इससे उनकी सामाजिक पहचान और सम्मान में वृद्धि हुई है तथा वे स्थानीय विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रभावी योगदान दे रही हैं। इसके अतिरिक्त, समूह आधारित नेतृत्व ने महिलाओं को अन्य ग्रामीण महिलाओं को प्रेरित करने, सरकारी योजनाओं की जानकारी प्रसारित करने तथा सामुदायिक समस्याओं के समाधान के लिए सामूहिक प्रयास करने में सक्षम बनाया है।

5. स्वयं सहायता समूहों की भूमिका

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। SHGs महिलाओं को सामूहिक शक्ति प्रदान करते हैं और उन्हें आर्थिक गतिविधियों से जोड़ते हैं।

SHGs के माध्यम से महिलाएँ—

- नियमित बचत करती हैं।
- बैंक ऋण प्राप्त करती हैं।
- छोटे व्यवसाय शुरू करती हैं।
- प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं।
- बाजार से जुड़ती हैं।

वर्ष 2023–24 तक भारत में लाखों स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक विकास का आधार बन चुके हैं।[9]

6. कौशल विकास और रोजगार अवसर

आधुनिक अर्थव्यवस्था में कौशल विकास महिला रोजगार का महत्वपूर्ण आधार है। VB-G RAM G के अंतर्गत महिलाओं को डिजिटल कौशल, उद्यमिता और व्यावसायिक प्रशिक्षण से जोड़ना आवश्यक है।

कौशल विकास से महिलाएँ—

- नए रोजगार क्षेत्रों में प्रवेश कर रही हैं।
- डिजिटल बाजारों का उपयोग कर रही हैं।
- अपने उत्पादों को बड़े बाजार तक पहुँचा रही हैं।

कौशल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार, कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है।[10]

7. चुनौतियाँ

VB-G RAM G के सकारात्मक प्रभावों के बावजूद कुछ चुनौतियाँ बनी हुई हैं—

1. ग्रामीण क्षेत्रों में योजनाओं की जानकारी का अभाव।
2. प्रशिक्षण और रोजगार के बीच अंतर।
3. बाजार तक सीमित पहुँच।
4. डिजिटल सुविधाओं की कमी।
5. सामाजिक रूढ़ियाँ और पारिवारिक बाधाएँ।
6. महिलाओं के लिए सुरक्षित कार्य वातावरण की आवश्यकता। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए स्थानीय संस्थाओं, पंचायतों, स्वयं सहायता समूहों और सरकारी विभागों के बीच बेहतर समन्वय आवश्यक है।

8. निष्कर्ष

VB-G RAM G ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण पहल है। रोजगार सुरक्षा, कौशल विकास, वित्तीय समावेशन और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से यह योजना महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में योगदान देती है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जब महिलाओं को रोजगार और आर्थिक संसाधनों तक पहुँच मिलती है, तो उनकी सामाजिक स्थिति, निर्णय क्षमता और जीवन स्तर में सकारात्मक परिवर्तन आता है।

ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण केवल महिला विकास का विषय नहीं है, बल्कि विकसित भारत के निर्माण की आधारशिला है। प्रभावी क्रियान्वयन, बेहतर प्रशिक्षण और बाजार संपर्क के माध्यम से VB-G RAM G ग्रामीण भारत में महिला नेतृत्व वाले विकास को मजबूत कर सकता है।

References:

1. Kumar, Sanjay. (2019). *Rural Development and Women Empowerment*. Patna: Gyan Prakashan.
2. Singh, R. K. (2018). *Social and Economic Development of India*. Patna: Bihar Hindi Granth Academy.
3. NITI Aayog. (2025). *Women-led Development and Inclusive Growth Report*. Government of India.
4. Ministry of Rural Development. (2025). *Annual Report: DAY-NRLM*. Government of India.
5. NABARD. (2025). *Status of Microfinance in India 2024–25*. Mumbai: NABARD.

6. Ministry of Rural Development. (2025). *Annual Report: Deendayal Antyodaya Yojana–National Rural Livelihood Mission (DAY-NRLM).* Government of India.
7. NABARD. (2025). *Status of Microfinance in India 2024–25.* National Bank for Agriculture and Rural Development, Mumbai.
8. Government of India. (2024). *Rural Development and Women Empowerment Report.* Ministry of Rural Development, New Delhi
9. Government of India. (2024). *Rural Development and Women Empowerment Report.* Ministry of Rural Development, New Delhi.
10. Ministry of Skill Development and Entrepreneurship. (2025). *Annual Report on Skill Development and Employment.* Government of India.

बौद्ध और वैदिक परंपराओं में ज्ञान के मौखिक हस्तांतरणः एक तुलनात्मक अध्ययन

कोमल*

शोध सारांश

भारत की वैदिक और बौद्ध परंपराओं ने सहस्राब्दियों तक केवल मौखिक हस्तांतरण से ज्ञान की विशाल राशि सुरक्षित रखी, फिर भी दोनों ज्ञान की प्रकृति के विपरीत सिद्धांतों पर आधारित थीं। यह शोधपत्र ऋग्वेदीय-तैत्तिरीय वैदिक शाखाओं की मौखिक शिक्षण-पद्धति की तुलना थेरवाद बौद्ध परंपरा से पाँच आयामों पर करता है: हस्तांतरित तत्व की तात्विक प्रकृति, शुद्धता सुनिश्चित करने की विधियाँ, सामाजिक संगठन, ज्ञानमीमांसीय प्रामाणिकता, तथा मौखिक-लिखित संबंध। संस्कृत-पालि स्रोतों एवं द्वितीयक साहित्य के आधार पर, विश्लेषण तर्क देता है कि वैदिक व्यवस्था सीमित वंशानुगत समुदाय में ध्वन्यात्मक यथार्थता के लिए, जबकि बौद्ध व्यवस्था खुले, सहमति-आधारित समुदाय में अर्थगत निष्ठा के लिए अनुकूलित हुई। दोनों एक ही समस्या के प्रभावी समाधान थे। पत्र अंत में विचार करता है कि यह तुलना अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, तथा पारंपरिक शिक्षण-पद्धति एवं संज्ञानात्मक विज्ञान के संवाद के लिए क्या योगदान देती है।

कुंजी शब्द: मौखिक परंपरा; वैदिक हस्तांतरण; श्रुति; विकृति पाठ; पालि त्रिपिटक; संगीति; भाणक; परंपरा; भारतीय ज्ञान परंपराएँ; स्मृति का संज्ञानात्मक विज्ञान

1. भूमिका

आज से लगभग तीन हज़ार वर्ष पूर्व, दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास, उत्तर-पश्चिमी भारत में एक पिता ने अपने पुत्र द्वारा गाई जा रही एक ऋचा के उच्चारण को सुधारा। वह ऋचा ऋग्वेद की थी, और यह सुधार कभी सामान्य घटना नहीं था: एक गलत स्वर या अशुद्ध उच्चारण तत्काल सुधारने योग्य दोष माना जाता था, ऐसे पाठों में जो घंटों चलते और वर्षों तक प्रतिदिन दोहराए जाते। इसके लगभग पाँच सौ वर्ष बाद, गंगा के मैदानी क्षेत्र में, पुनरावृत्ति का एक भिन्न रूप उभरा: जिन भिक्षुओं ने बुद्ध से कोई शिक्षा सुनी थी, वे उसे एक-दूसरे को सुनाते, उद्देश्य शब्दशः पुनरुत्पादन का नहीं बल्कि अर्थ को साझा स्मृति में स्थिर करने का होता। इसके चार शताब्दियों बाद, यह अभ्यास एक अभूतपूर्व घटना में परिणत हुआ: श्रीलंका में संपूर्ण पालि त्रिपिटक ताड़पत्रों पर अंकित किया गया, क्योंकि पाठ करने वाला समुदाय स्मृति मात्र पर भरोसा करने के लिए बहुत छोटा हो चुका था।

ये दोनों दृश्य दो ऐसी मौखिक संस्कृतियों की ओर संकेत करते हैं जो इतिहास की सबसे दीर्घजीवी और तकनीकी रूप से सबसे परिष्कृत मानी जाती हैं। वैदिक और बौद्ध परंपराओं ने एक भूभाग साझा किया, समान संस्कृतनिष्ठ विरासत अपनाई, और इस पर सहमत थीं कि हस्तांतरण निष्ठापूर्ण होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, वे लगभग हर बिंदु पर भिन्न थीं: क्या हस्तांतरित हो रहा था, किसे उसे प्राप्त करने का अधिकार था, और शुद्धता कैसे सुरक्षित रखी जाती थी। यह शोधपत्र दोनों परंपराओं की तुलना पाँच आयामों पर करता है: तत्वमीमांसा, तकनीक, सामाजिक संगठन, ज्ञानमीमांसीय प्रामाणिकता, तथा मौखिक-लिखित संबंध, जो मूल वैदिक-पालि स्रोतों तथा द्वितीयक साहित्य पर आधारित है। यह तुलना इससे संबंधित है कि भारत मौखिक धरोहर को जीवंत अभ्यास के रूप में कैसे सुरक्षित रखे, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 "भारतीय ज्ञान परंपराओं" के

* दिल्ली विश्वविद्यालय

पुनरुद्धार से क्या अभिप्राय रख सकती है, तथा इन प्राचीन तकनीकों और समकालीन स्मृति-शोध के बीच उभरते संवाद से भी।

2. संबंधित साहित्य की समीक्षा

2.1 वैदिक मौखिक परंपरा

वैदिक मौखिकता पर आधुनिक अध्ययन की शुरुआत मैक्स म्यूलर के सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट से मानी जाती है, और यह परंपरा यान गोंडा, लुई रेनू के ध्वन्यात्मक अध्ययनों, तथा माइकल विट्ज़ेल के इस पुनर्निर्माण में आगे बढ़ती है कि क्षेत्रीय वैदिक शाखाएँ ऐतिहासिक रूप से किस प्रकार विकसित हुईं। इनका सम्मिलित चित्र एक ऐसी परंपरा का है जो कभी एक धारा नहीं रही, बल्कि स्थानीय रूप से भिन्न पाठ-परंपराओं का समूह रही। फ्रिट्स स्टाल के अग्निचयन अनुष्ठान पर क्षेत्र-कार्य ने, 1975 में केरल के एक वैदिक यज्ञ में दस्तावेज़ीकृत, यह तर्क देकर बहस बढ़ाई कि मंत्र-पाठ निरर्थक है, कि उसकी शक्ति अर्थ में नहीं बल्कि ध्वन्यात्मक रूप में निहित है। स्टेफ़नी जेमिसन और जोएल ब्रेरेटन ने इस व्याख्या का प्रतिवाद किया है। हाल ही में, राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान केंद्र के तंत्रिका-अध्ययनों ने प्रशिक्षित वैदिक पाठकों की तुलना नियंत्रण समूहों से आरंभ की है, जिसमें ध्वन्यात्मक प्रक्रमण और शाब्दिक स्मृति में मापनीय अंतर पाए गए हैं।

2.2 बौद्ध मौखिक परंपरा

बौद्ध मौखिक हस्तांतरण पर कार्य एक संबंधित परंतु भिन्न बहस से आकार लेता है, जो मुख्यतः पालि त्रिपिटक की ऐतिहासिकता को बुद्ध की शिक्षा के अभिलेख के रूप में लेकर है। टी. डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग ने पालि कोश का भाषावैज्ञानिक आधार स्थापित किया, तथा के. आर. नॉर्मन ने अन्वेषित किया कि उसके पाठ-समुदाय किस प्रकार आकार लेते गए। रिचर्ड गोम्ब्रिच के अनुसार बुद्ध ने जान-बूझकर मौखिकता अपनाई, न कि इसलिए कि लेखन अनुपलब्ध था। लांस कज़िन्स के संगीति संबंधी अध्ययन में संघ द्वारा स्मृत सामग्री के सामुदायिक सत्यापन का वर्णन है, जबकि भिक्खु आनालायो की मज्झिम निकाय एवं चीनी आगम समांतर पाठ की तुलना यह प्रमाण देती है कि परंपरा स्वतंत्र हस्तांतरण-रेखाओं में किस प्रकार विचलित हुई। योहानेस ब्रोंखोर्स्ट ने इसका सबसे संपूर्ण सैद्धांतिक विवरण दिया है कि भाषा-ध्वनि के प्रति वैदिक-बौद्ध दृष्टिकोण इतने तीक्ष्ण रूप से क्यों भिन्न हुए।

2.3 तुलनात्मक दृष्टिकोण

दोनों परंपराओं की प्रत्यक्ष तुलना दुर्लभ रही है। ए. के. वार्डर का भारत का साहित्यिक इतिहास दोनों को एक-दूसरे के सम्मुख रखे बिना प्रस्तुत करता है, तथा शेल्डन पोलक का संस्कृत विश्वबंधुत्व संबंधी विवरण उनकी अन्योन्यक्रिया का मानचित्रण करता है परंतु ध्वनि-ज्ञान के प्रति उनकी दिशा में अंतर पर ध्यान नहीं देता। सबसे उपयोगी हालिया योगदान भारतविद्या से बाहर से आए हैं, विशेषतः डेविड रुबिन के उन स्मरण-संबंधी बाध्यताओं, लय, बिम्ब, सूत्रबद्ध पुनरावृत्ति, पर संज्ञानात्मक शोध से, जो असंबद्ध संस्कृतियों में मौखिक रचना को आकार देती हैं। दक्षिण एशिया पर लागू होने पर, यह ढाँचा यह अलग करने में सहायक है कि वैदिक-बौद्ध स्मरण-व्यवस्थाएँ क्या साझा करती हैं और उन्हें वास्तव में क्या भिन्न बनाता है।

3. शोध पद्धति और परिधि

यह विश्लेषण तीन प्रकार की स्रोत-सामग्री पर आधारित है। पहली है वैदिक सहायक साहित्य: ऋग्वेद-प्रातिशाख्य, तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य, पाणिनीय-शिक्षा, तथा बृहदारण्यक उपनिषद के प्रासंगिक अंश, जिन्हें इस दृष्टि से पढ़ा गया कि वे परंपरा द्वारा अपने हस्तांतरण के नियमन के विषय में क्या प्रकट करते हैं। दूसरी है पालि सामग्री: चुल्लवग्ग का प्रथम दो संगीतियों का विवरण, दीघ निकाय, तथा चयनित मज्झिम निकाय सुत्त, साथ ही महावंश का वह वृत्तांत जो पालि त्रिपिटक के लेखन में परिणत होने का वर्णन करता है। तीसरी है

भारतविद्या, बौद्ध अध्ययन एवं संज्ञानात्मक विज्ञान में द्वितीयक साहित्य। पाँचों आयामों की जाँच पहले प्रत्येक परंपरा के भीतर अलग-अलग, तत्पश्चात तुलनात्मक रूप से की जाती है।

परिधि की दो सीमाएँ उल्लेखनीय हैं। कोई परंपरा आंतरिक रूप से एकरूप नहीं है; यह शोधपत्र वैदिक पक्ष पर ऋग्वेदीय-तैत्तिरीय-यजुर्वेदीय शाखाओं तथा बौद्ध पक्ष पर थेरवाद पालि परंपरा पर केंद्रित है, अन्य शाखाओं का उपयोग केवल वहीं करता है जहाँ इससे तुलना स्पष्ट होती है। उद्देश्य विश्लेषणात्मक है, संपूर्णतावादी नहीं: संरचनात्मक भिन्नताओं को अलग करना जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं, न कि किसी परंपरा का समग्र सर्वेक्षण प्रस्तुत करना।

4. वैदिक परंपरा में मौखिक हस्तांतरण

4.1 ध्वनि बतौर तत्वमीमांसा

वैदिक मौखिक अभ्यास वेद की प्रकृति के विषय में एक विशिष्ट दावे पर आधारित है। वेद अपौरुषेय है, अर्थात मानव-रचित नहीं: इसकी रचना नहीं हुई बल्कि इसे ऋषियों द्वारा "श्रवण" किया गया, इसीलिए श्रुति, जिनकी तपस्या ने उन्हें संसार से पूर्व विद्यमान यथार्थ के प्रति खोल दिया। उनका कार्य इसे पूर्ण शुद्धता से प्राप्त कर अपरिवर्तित आगे बढ़ाना था, अर्थात शब्दों के अर्थ को नहीं बल्कि उनके यथातथ्य ध्वन्यात्मक रूप को सुरक्षित रखना। वैदिक अक्षर का गलत उच्चारण इसलिए प्रदर्शन-त्रुटि नहीं बल्कि तात्त्विक त्रुटि थी: तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य गलत उच्चारणों से होने वाली हानि का विवरण देता है। इस ढाँचे में ध्वनि पवित्र सामग्री का वाहक नहीं, ध्वनि स्वयं पवित्र सामग्री है, इसीलिए परंपरा का शब्द, शब्द-ब्रह्म, अर्थात वह ध्वनि जो ब्रह्म है। वैदिक हस्तांतरण के विषय में बाकी सब कुछ, स्मरण-संबंधी विस्तृतता, सामाजिक विशिष्टता, लेखन के प्रति प्रतिरोध, ध्वन्यात्मक स्थिरता, इसी आधार से उत्पन्न होता है।

4.2 पाठ पद्धति

इस शुद्धता को प्राप्य बनाने वाला साधन पाठ-विधियों का क्रमिक अनुक्रम था। संहिता-पाठ पाठ को निरंतर रूप में पढ़ता है, उन संधि-परिवर्तनों सहित जो बोलचाल की संस्कृत में शब्द-सीमाओं पर घटित होते हैं। पद-पाठ उन परिवर्तनों को हटाकर प्रत्येक शब्द को मूल रूप में प्रस्तुत करता है, जिससे वह व्याकरण उजागर होता है जिसे संयुक्त पाठ छुपाता है। क्रम-पाठ फिर पृथक शब्दों को अतिव्यापी युग्मों में जोड़ता है, पहला दूसरे के साथ, दूसरा तीसरे के साथ, अनुक्रम को एक-एक जोड़ पुनर्निर्मित करते हुए। आगे की विकृति, अथवा "रूपांतरण", विधियाँ इस पुनर्संयोजन को तीव्र करती हैं: जटा-पाठ सन्निकट युग्मों को आगे-पीछे (1-2, 2-1, 1-2...) दोहराता है, तथा घन-पाठ, सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण, त्रिकों को आगे, पीछे, पुनः आगे (1-2-3, 3-2-1, 1-2-3...) चक्रित करता है, प्रत्येक नया त्रिक पहले पढ़े दो सदस्यों को समाहित करते हुए।

यहाँ संज्ञानात्मक अभिकल्पना अत्यंत सटीक है। एक विस्मृत अक्षर संहिता-पाठ में उजागर न हो सकता, जहाँ त्रुटि का अभ्यस्त पाठक उसे शुद्ध ही सुनता है। घन-पाठ में, वही अक्षर कई संरचनात्मक स्थितियों में पुनरावृत्त होता है, आगे, उलटा, पुनः स्थापित, अतः एक संदर्भ की त्रुटि अन्य संदर्भों में क्रम भंग कर देती है। त्रुटि इसलिए पकड़ में नहीं आती कि कोई उसे प्रत्यक्षतः पकड़ता है, बल्कि इसलिए कि पुनरावृत्त एन्कोडिंग उसे छिपाना संरचनात्मक रूप से कठिन बना देती है, पाठ के स्वरूप में ही निर्मित एक त्रुटि-संसूचन तकनीक, और यही प्रमुख कारण है कि वैदिक कोश लगभग किसी भी अन्य मौखिक पाठ से अधिक समय तक ध्वन्यात्मक रूप से स्थिर बना रहा है।

4.3 प्रातिशाख्य और शिक्षा: एक मौखिक अभ्यास के लिए लिखित मानदंड

पाठ-पद्धति को अपना एक सहायक साहित्य समर्थन देता था। प्रत्येक वैदिक शाखा एक प्रातिशाख्य बनाए रखती थी, एक ध्वन्यात्मक ग्रंथ जो उस शाखा के पाठ हेतु नियम-दर-नियम शुद्ध उच्चारण, स्वराघात, तथा संधि का निर्धारण करता था; शौनक का ऋग्वेद-प्रातिशाख्य तथा कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य

इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इन ग्रंथों ने मौखिक परंपरा को कुछ असामान्य दिया: एक बाह्य, लिखित मानदंड जिसके विरुद्ध पाठक के प्रदर्शन की जाँच हो सके। शिक्षा ग्रंथों ने पाठ के शारीरिक पक्ष, मुद्रा, श्वास, स्वर-गुणवत्ता, को संबोधित कर इसे पूरा किया, ध्वनि को, पाणिनीय-शिक्षा के आरंभिक बिंब में, उतना ही शरीर में अनुभूत मानते हुए जितना कान से श्रवित।

4.4 गुरुकुल और सीमित पहुँच

इस प्रशिक्षण का सामाजिक परिवेश गुरुकुल था, जहाँ एक विद्यार्थी, अथवा ब्रह्मचारी, वर्षों तक, कभी दशक भर से अधिक, परिवार छोड़कर गुरु के घर में रहता, केवल पाठ को ही नहीं बल्कि गुरु की संपूर्ण जीवन-शैली को आत्मसात करते हुए। पहुँच जाति द्वारा नियंत्रित थी: औपचारिक रूप से द्विज वर्णों के लिए खुली, परंतु व्यवहार में गहनतम हस्तांतरण-परंपराएँ लगभग विशेष रूप से ब्राह्मण परिवारों में ही बनी रहीं। यह अपने आप में विशिष्टता के लिए विशिष्टता नहीं थी; मंत्रों को उस किसी के लिए खतरनाक माना जाता था जो उन्हें प्राप्त करने को तैयार न हो, अतः प्रतिबंध पदानुक्रम जितना ही सुरक्षा का कार्य भी करता था। परिणाम असाधारण शुद्धता का एक कोश था, जो संकीर्ण विशेषज्ञ समुदाय द्वारा बनाए रखा गया तथा बाकी सभी के लिए बंद था।

5. बौद्ध परंपरा में मौखिक हस्तांतरण

5.1 ध्वनि पर अर्थ की प्रधानता

बौद्ध मौखिक अभ्यास वैदिक आधार-मान्यता को उलट देता है। जो हस्तांतरित होता है वह धम्म है, दुःख, उसके कारणों, तथा उससे परे के मार्ग पर बुद्ध की शिक्षा, और इसका मूल्य उन अक्षरों में नहीं जो संयोगवश इसे वहन करते हैं। चुल्लवग्ग में अभिलिखित है कि बुद्ध ने दो ब्राह्मण भिक्षुओं का यह अनुरोध अस्वीकार किया कि उनकी शिक्षा संस्कृत छंद में हो, और आग्रह किया कि प्रत्येक समुदाय धम्म को अपनी बोली में प्राप्त करे। इस निर्णय ने एक विशाल अनुवाद-उद्यम का बीजारोपण किया, जिसने शिक्षा को चीनी, तिब्बती, सिंहली, बर्मी, खमेर, कोरियाई, तथा जापानी भाषाओं तक पहुँचाया। जहाँ वैदिक रूढ़िवाद मानता है कि मंत्र का अनुवाद उसे नष्ट करता है, बौद्ध अभ्यास अनुवाद को लगभग कर्तव्य मानता है: धम्म हर दुःख भोगते व्यक्ति के लिए है, न कि केवल उसके लिए जो किसी विशेष भाषा में जन्मा हो।

5.2 पालि त्रिपिटक में स्मरण-सहायक रचना

अर्थ की प्रधानता का अर्थ यह नहीं कि शुद्धता के प्रति उदासीनता बरती जाए। पालि ग्रंथ ऐसे साधनों से सघन हैं जो विश्वसनीय स्मरण संभाव्य बनाते हैं। संख्यांकित समुच्चय इनमें सबसे व्यापक हैं: चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, पाँच स्कंध, प्रतीत्यसमुत्पाद की बारह कड़ियाँ। एक संख्या सामग्री और स्मृति-जाँच दोनों का कार्य करती है, क्योंकि चार में गिने समुच्चय में से तीन ही प्रस्तुत करने वाले पाठक को गणना से ही चेतावनी मिल जाती है कि कुछ छूट रहा है। सूत्रबद्ध आरंभ-समापन, जैसे प्रत्येक सुत्त को आरंभ करने वाला वाक्यांश "एवं मया श्रुतम्", पाठक को केवल गति के बल पर प्रवचन में आगे ले जाते हैं, क्योंकि सुपरिचित सूत्र आरंभ होने पर स्वयं पूर्ण होने की प्रवृत्ति रखता है। उद्दान पद्य, जो सुत्तों के समूहों के संक्षिप्त सारांश रूप में जोड़े जाते हैं, पुनर्प्राप्ति-सूचकांक का कार्य करते हैं, जिससे पाठक जाँच सके कि समुच्चय में से कुछ स्मृति से फिसला तो नहीं।

5.3 संगीतिः सामुदायिक सत्यापन

जहाँ वैदिक व्यवस्था त्रुटि को एकल पाठक की पुनरावृत्त एन्कोडिंग के भीतर पकड़ती है, बौद्ध परंपरा ने एक भिन्न जाँच संस्थागत की: संगीति, अर्थात सामुदायिक पाठ, जिसमें एकत्रित संघ समवेत रूप से कोश का पाठ करता, जिससे किसी पाठक की स्मृति और समूह की स्मृति के बीच अंतर श्रव्य हो जाता। राजगृह की प्रथम संगीति का पारंपरिक वृत्तांत, पाँच सौ भिक्षुओं द्वारा विनय-धम्म की पुष्टि जैसे-जैसे उपालि और आनंद

उन्हें सुनाते गए, अपने विवरणों में ऐतिहासिक रूप से विवादास्पद है, और यह शोधपत्र इस पर कोई पक्ष नहीं लेता। जो संदेह से परे है वह यह कि संगीति शताब्दियों तक एक वास्तविक संस्थागत अभ्यास रही, व्यक्तिगत स्मृति की सामूहिक स्मृति से जाँच करते हुए, वैदिक व्यवस्था से भिन्न एक त्रुटि-सुधार रणनीति, जो संरचनात्मक पुनरावृत्ति के बजाय सामाजिक तुलना पर आधारित है।

5.4 भाणक

थेरवाद बौद्ध धर्म ने भी वैदिक शाखा से तुलनीय एक अभिरक्षक विशेषज्ञता विकसित की: भाणक, अर्थात पाठक, एक भिक्षु जो कोश के एक खंड के विशेषज्ञ पाठ हेतु उत्तरदायी होता, दीर्घ निकाय के लिए दीघ-भाणक, मज्झिम निकाय के लिए मज्झिम-भाणक, तथा इसी प्रकार विनय तक। जहाँ शाखा की सदस्यता जन्म से मिलती थी, भाणक का दर्जा किसी भी अनुशासित भिक्षु के लिए खुला था: योग्यता के, न कि वंश के, इर्द-गिर्द संगठित विशेषज्ञों का एक विस्तृत नेटवर्क।

5.5 लेखन का निर्णय

बौद्ध धर्म के मौखिकता के प्रति उपकरणात्मक दृष्टिकोण का सबसे स्पष्ट प्रमाण यह है कि परंपरा ने इस पर अनन्य निर्भरता का परित्याग किस प्रकार किया। महावंश पालि त्रिपिटक के लेखन को श्रीलंका में वट्टगामणी अभय के शासनकाल में, लगभग 29-17 ईसा पूर्व, स्थान देता है, ऐसे अकाल के समय जब स्थविरों ने निर्णय लिया कि मठवासी जनसंख्या इतनी क्षीण हो चुकी है कि केवल स्मृति के बल पर धम्म का जीवित रहना सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। यहाँ लेखन को प्रगति नहीं बल्कि आपातकालीन उपाय माना गया, जो तब अपनाया गया जब मौखिक हस्तांतरण की विश्वसनीयता विफल हो चुकी थी, वैदिक रूढ़िवाद के विपरीत, जिसने लेखन को एक सतह पर बना चिह्न मानकर प्रतिरोध किया। यह अंतर पहले उल्लिखित तत्वमीमांसीय विभाजन से सीधे उत्पन्न होता है: जो परंपरा अर्थ को प्राथमिक मानती है वह लिखित वाहन स्वीकार कर सकती है; जो ध्वनि को स्वयं पवित्र मानती है वह नहीं कर सकती।

6. तुलनात्मक विश्लेषण: पाँच आयाम

6.1 क्या हस्तांतरित किया जाता है

दोनों व्यवस्थाओं के बीच सबसे गहरा अंतर तत्वमीमांसीय है, और बाकी सब इसी से उत्पन्न होता है। वैदिक हस्तांतरण शब्द को सुरक्षित रखता है: शाश्वत, अपौरुषेय ध्वनि, जिसके यथार्थ से संबंध को मीमांसा दार्शनिक कुमारिल भट्ट ने संघटक माना, एक वर्षा-मंत्र वर्षा का वर्णन नहीं करता बल्कि उस संरचना में सहभागी होता है जो वर्षा को संभव बनाती है। बौद्ध हस्तांतरण एक ऐसी शिक्षा सुरक्षित रखता है जो, स्वयं के अनुसार, किसी भी भाषा में केवल सम्मुति, अर्थात व्यावहारिक रूप से निर्दिष्ट है, पालि, संस्कृत, अथवा चीनी में बिना क्षति अभिव्यक्त होने योग्य, क्योंकि यह इनमें से किसी के भी तादात्म्य में नहीं है।

6.2 शुद्धता सुनिश्चित करना

प्रत्येक परंपरा की निष्ठा सुनिश्चित करने की विधि इस पर निर्भर करती है कि वह स्वयं को क्या हस्तांतरित करता मानती है। वैदिक पाठ-पद्धति सहस्राब्दियों पूर्व ही उसका पूर्वाभास कर लेती है जिसे संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक अब विस्तृत एन्कोडिंग कहते हैं: एक सामग्री को अनेक, परस्पर-जाँचने वाले रूपों में संग्रहीत कर सुधरी स्मृति-धारणा, जो रॉबर्ट ब्योर्क के "वांछनीय कठिनाइयों" संबंधी शोध के निकट है। बौद्ध व्यवस्था इसके बजाय उस पर आधारित है जिसे वाल्टर ओंग ने मौखिक चिंतन की समुच्चयकारी प्रवृत्ति कहा, पूर्व-निर्मित सूत्रबद्ध इकाइयों से पाठ का निर्माण जिनकी गति स्मरण का कार्यकारी-स्मृति भार घटाती है, जिसे संख्यात्मक संरचना पूरक करती है, जो मन की मात्रा-संवेदनशीलता को अंतर्निर्मित विसंगति-संसूचक में बदल देती है।

6.3 सामाजिक संगठन

वैदिक अभिरक्षा वंशानुगत और जाति-प्रतिबंधित है, इसकी प्रामाणिकता वंशावली-आधारित है: गुरु की प्रतिष्ठा मूल ऋषियों तक जाने वाली अटूट श्रृंखला पर निर्भर करती है। बौद्ध अभिरक्षा, कम-से-कम सिद्धांत रूप में, जन्म की परवाह किए बिना सभी के लिए खुली है, विनय स्पष्ट कहता है कि संघ में प्रवेश पर जाति का महत्व नहीं रहता, और यह वंश के बजाय शिक्षा, आचरण, तथा उपलब्धि पर निर्भर करती है। एक परंपरा प्रतिबंध से स्थिरता बनाती है; दूसरी खुलेपन से पहुँच।

6.4 ज्ञानमीमांसीय प्रामाणिकता

दोनों परंपराएँ मौखिक हस्तांतरण को अधिकतम प्रामाणिकता वाला मानती हैं, परंतु भिन्न कारणों से। वैदिक श्रुति प्रामाणिक है क्योंकि यह श्रवित है, ऋषियों के मूल दर्शन तक जाने वाली अटूट श्रृंखला में, एक निरंतरता जिसे कोई लिखित पाठ सुरक्षित नहीं रख सकता। बौद्ध प्रामाणिकता सामूहिक सत्यापन पर, और साधक के स्वयं के अनुभव पर निर्भर करती है: कालाम सुत्त का निर्देश किसी शिक्षा को केवल इसलिए स्वीकार न करने का है क्योंकि वह सम्मानित परंपरा से आती है, बल्कि उसे इस आधार पर परखने का है कि क्या वह कल्याण अथवा हानि की ओर ले जाती है। एक परंपरा साधक से हस्तांतरण-श्रृंखला पर भरोसा करने को कहती है; दूसरी शिक्षा को परखने को।

6.5 मौखिक और लिखित

दोनों परंपराओं ने अंततः लिखित पाठ उत्पन्न किए, परंतु विपरीत शर्तों पर। वैदिक रूढ़िवाद के लिए लिखित पाठ स्थायी रूप से गौण बना रहता है, अधिक-से-अधिक स्मृति-सहायक, जीवंत गुरु की वाणी का स्थान लेने में असमर्थ, क्योंकि वेद को किसी सतह पर अंकित नहीं किया जा सकता। बौद्ध धर्म के लिए, लेखन संकट-प्रतिक्रिया के रूप में आरंभ हुआ और शीघ्र ही कार्यशील साक्षर संस्कृति का आधार बन गया: बुद्धघोष का पाँचवीं शताब्दी का टीका-साहित्य लिखित पाठों को विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण की वस्तु मानकर पूर्वमान्य लेता है, तथा महायान परंपरा और आगे बढ़ी, प्रज्ञापारमिता पांडुलिपि की भौतिक प्रतिलिपि बनाने को स्वयं पुण्यकारी कर्म मानते हुए।

तालिका 1 पाँचों आयामों में इस तुलना का सारांश प्रस्तुत करती है।

आयाम	वैदिक परंपरा	बौद्ध परंपरा
क्या हस्तांतरित होता है	शाश्वत, अपौरुषेय पवित्र ध्वनि (शब्द); ध्वन्यात्मक रूप स्वयं पवित्र है	धम्म; अर्थ प्रधान है, भाषा एक वाहन है
शुद्धता सुनिश्चित करना	विकृति पाठ पद्धति (संहिता, पद, क्रम, जटा, घन) – व्यक्तिगत स्मृति में संरचनात्मक पुनरावृत्ति	संख्यांकित समुच्चय, सूत्रबद्ध पुनरावृत्ति, उद्दान पद्य; संगीति सामुदायिक जाँच
सामाजिक संगठन	वंशानुगत गुरुकुल; जाति-प्रतिबंधित; पितृवंशीय अभिरक्षा	खुला मठवासी संघ; योग्यता-आधारित भाणक विशेषज्ञता
ज्ञानमीमांसीय प्रामाणिकता	वंशावली-आधारित – ऋषियों से अधिकृत गुरुओं द्वारा अटूट श्रवण	सामूहिक सहमति और साधक का स्वयं का अनुभवजन्य सत्यापन
मौखिक और लिखित	लेखन को तत्वमीमांसीय दृष्टि से हीन मानकर प्रतिरोध; मौखिक हस्तांतरण प्रधान बना रहता है	लेखन को व्यावहारिक संकट-प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार; मौखिक-लिखित पूरक बन जाते हैं

वैदिक और बौद्ध मौखिक हस्तांतरण का तुलनात्मक सारांश

7. समकालीन प्रासंगिकता

7.1 अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर

यूनेस्को का अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर संरक्षण हेतु 2003 का अभिसमय मौखिक परंपरा को सक्रिय संरक्षण की आवश्यकता वाली श्रेणी मानता है; वैदिक मंत्रोच्चार 2008 में यूनेस्को सूची में सम्मिलित हुआ। यह तुलना सुझाती है कि "मौखिक परंपरा" एक परिघटना नहीं बल्कि भिन्न सुभेद्यताओं वाले अभ्यासों का समूह है। वैदिक व्यवस्था स्थिर है परंतु जनसांख्यिकीय दृष्टि से भंगुर: योग्य पाठकों की संख्या सीमा से नीचे गिरे तो श्रृंखला ऐसे टूटती है जिसे कोई रिकॉर्डिंग ठीक नहीं कर सकती, क्योंकि जो सुरक्षित है वह अभ्यास है, अभिलेख नहीं। बौद्ध व्यवस्था, वंशावली के बजाय सामुदायिक प्रामाणिकता पर निर्भर, जनसांख्यिकीय क्षति बेहतर सहन करती है परंतु क्रमिक अर्थगत विचलन के प्रति अधिक उजागर है जब स्मरण-सहायक संरचना शिथिल पड़ती है। इस भेद के प्रति असंवेदनशील संरक्षण नीति संसाधनों का दुरुपयोग करेगी: वैदिक पाठक को रिकॉर्ड करना प्रदर्शन सुरक्षित रखता है, उस परंपरा को नहीं जिसने उसे उत्पन्न किया।

7.2 एनईपी 2020 और भारतीय ज्ञान परंपराएँ

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विद्यालय-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों में भारतीय ज्ञान परंपराओं के पुनरुद्धार का आह्वान करती है, जिसे यह तुलना उपयोगी ढंग से जटिल बनाती है। वैदिक-बौद्ध हस्तांतरण एक स्वदेशी पद्धति नहीं बल्कि दो हैं, वास्तविक अर्थों में परस्पर विरोधी, और दोनों पर आधारित कोई पुनरुद्धार जो अंतर दर्ज किए बिना हो, असंगत घालमेल का जोखिम उठाता है। इनके बीच चयन, अनुशासित स्मरण पर वैदिक बल, अपने संज्ञानात्मक लाभ तथा जाति-विशिष्टता की उलझन सहित, बनाम खुले, सामुदायिक सत्यापित शिक्षण पर बौद्ध बल, उतना ही राजनीतिक चयन है जितना शैक्षणिक, जिसके आज के भारतीय शिक्षा में पहुँच-समानता हेतु सजीव निहितार्थ हैं।

7.3 संज्ञानात्मक विज्ञान

यह तुलना स्मृति-शोध के साथ उपयोगी संवाद भी पोषित करती है। वैदिक घन-पाठ ने, अनुष्ठानिक अभ्यास में, उसका पूर्वाभास कर लिया था जिसे विस्तृत-एन्कोडिंग शोध बहुत बाद सैद्धांतिक रूप देगा: कि पुनरावृत्त, श्रमसाध्य एन्कोडिंग ऐसी स्मृति-धारणा उत्पन्न करती है जो हल्की एन्कोडिंग नहीं कर सकती। बौद्ध निर्भरता खंडीकरण, सूत्र, तथा पुनर्प्राप्ति-संकेतों पर स्मृति-साहित्य की समांतर परंतु भिन्न धारा से मेल खाती है। दोनों परंपराएँ, समकालीन शिक्षण-विज्ञान की शब्दावली में, "वांछनीय कठिनाई" के कार्यशील उदाहरण हैं, यह प्रमाण कि कठिनतर एन्कोडिंग अधिक स्थायी स्मृति उत्पन्न करती है, एक संसाधन जिसका शैक्षणिक मनोविज्ञान ने अभी दोहन आरंभ ही किया है।

8. निष्कर्ष

वैदिक और बौद्ध मौखिक हस्तांतरण ने एक ही समस्या, लेखन बिना पीढ़ियों के आर-पार जटिल ज्ञान ले जाना, को ज्ञान की प्रकृति के दो सुसंगत परंतु विपरीत सिद्धांतों से सुलझाया। वैदिक परंपरा ने ध्वनि का कोश निर्मित किया: अटूट, यथातथ्य अभिलेख जिसे संकीर्ण वंशानुगत समुदाय ने तीन सहस्राब्दियों तक बनाए रखा। बौद्ध परंपरा ने अर्थ का नमूना निर्मित किया: ऐसी शिक्षा जो खुले, सहमति-सत्यापित हस्तांतरण से भाषाओं-संस्कृतियों के आर-पार वहन हुई, अपरिवर्तित रहने के बजाय यात्रा करते हुए विस्तृत होती गई। यह तुलना श्रेष्ठता का निर्णय नहीं देती; प्रत्येक परंपरा एक ही समस्या का भिन्न, विकसित समाधान है, जिसे उसी मानदंड पर परखा गया जो अंततः मायने रखता है: सतत अभ्यास के हज़ारों वर्ष। यह अब मुख्यतः ऐतिहासिक रुचि नहीं बल्कि कार्यशील प्रतिमानों का समुच्चय प्रस्तुत करती है: भारत अपनी मौखिक धरोहर की रक्षा कैसे करे, एनईपी 2020 के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपराओं के पुनरुद्धार हेतु क्या आवश्यक होगा, तथा प्राचीन शिक्षण-पद्धति एवं आधुनिक संज्ञानात्मक विज्ञान के संवाद हेतु जो अभी बमुश्किल आरंभ हुआ है।

संदर्भ सूची (References)

Analayo, Bhikkhu. (2011). A Comparative Study of the Majjhima-nikaya. Dharma Drum Publishing.

Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India. Sidgwick & Jackson.

Bjork, R. A., & Bjork, E. L. (2011). Making things hard on yourself, but in a good way: Creating desirable difficulties to enhance learning. In M. A. Gernsbacher et al. (Eds.), Psychology and the Real World (pp. 56–64). Worth Publishers.

Bronkhorst, J. (2001). Etymology and magic: Yaska's Nirukta, Plato's Cratylus, and the riddle of semantic etymologies. Numen, 48(2), 147–203.

Buddhaghosa. (5th century CE / trans. Bhikkhu Nanamoli, 1956). The Path of Purification (Visuddhimagga). Buddhist Publication Society.

Cardona, G. (1997). Panini: His Work and Its Traditions (Vol. 1, 2nd ed.). Motilal Banarsidass.

Cousins, L. S. (1983). Pali oral literature. In P. Denwood & A. Piatigorsky (Eds.), Buddhist Studies: Ancient and Modern (pp. 1–11). Curzon Press.

Deshpande, M. M. (1993). Sanskrit and Prakrit: Sociolinguistic Issues. Motilal Banarsidass.

Gombrich, R. F. (1990). How Buddhism Began: The Conditioned Genesis of the Early Teachings. Athlone Press.

Gombrich, R. F. (2009). What the Buddha Thought. Equinox.

Gonda, J. (1975). Vedic Literature: Samhitas and Brahmanas. Otto Harrassowitz.

Government of India, Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.

Jamison, S. W., & Brereton, J. P. (Trans.). (2014). The Rigveda: The Earliest Religious Poetry of India (3 vols.). Oxford University Press.

Kak, S. (2000). The Astronomical Code of the Rigveda. Aditya Prakashan.

Krishnamacharya, E. (Ed.). (1937). Taittiriya Pratisakhya with Tribhashyaratna. Adyar Library.

Mahavamsa (trans. W. Geiger). (1912). The Mahavamsa or The Great Chronicle of Ceylon. Pali Text Society.

Norman, K. R. (1983). Pali Literature. Otto Harrassowitz.

Norman, K. R. (2006). A Philological Approach to Buddhism. Pali Text Society.

Oldenberg, H. (Ed.). (1879–1883). The Vinaya Pitakam (5 vols.). Pali Text Society.

Olivelle, P. (Trans.). (1998). The Early Upanishads: Annotated Text and Translation. Oxford University Press.

Ong, W. J. (1982). Orality and Literacy: The Technologizing of the Word. Methuen.

Pollock, S. (2006). The Language of the Gods in the World of Men: Sanskrit, Culture, and Power in Premodern India. University of California Press.

Renou, L. (1960). Grammaire de la langue vedique. IAC.

Rubin, D. C. (1995). Memory in Oral Traditions: The Cognitive Psychology of Epic, Ballads, and Counting-Out Rhymes. Oxford University Press.

Smith, F. M. (2011). The Self Possessed: Deity and Spirit Possession in South Asian Literature and Civilization. Columbia University Press.

Staal, F. (1989). Rules Without Meaning: Ritual, Mantras and the Human Sciences. Peter Lang.

Thapar, R. (2002). Early India: From the Origins to AD 1300. University of California Press.

UNESCO. (2003). Convention for the Safeguarding of the Intangible Cultural Heritage. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.

von Hinuber, O. (1996). A Handbook of Pali Literature. Walter de Gruyter.

Warder, A. K. (1967). Pali Metre: A Contribution to the History of Indian Literature. Pali Text Society.

Witzel, M. (1997). The development of the Vedic canon and its schools: The social and political milieu. In M. Witzel (Ed.), Inside the Texts, Beyond the Texts (pp. 257–348). Harvard Oriental Series.

एशिया में चीन की विस्तारवादी नीति और भारत की सुरक्षा चिंताएँ

रमेश चन्द्र*

सारांश

इक्कीसवीं सदी में चीन ने अपनी तीव्र आर्थिक, सैन्य एवं तकनीकी प्रगति के आधार पर एशिया तथा विश्व राजनीति में अपना प्रभाव उल्लेखनीय रूप से बढ़ाया है। चीन की विदेश नीति में बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI), दक्षिण चीन सागर में सैन्यीकरण, हिंद महासागर में बढ़ती नौसैनिक उपस्थिति तथा चीन–पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) जैसी पहलें उसकी व्यापक रणनीतिक महत्वाकांक्षाओं को दर्शाती हैं। इन गतिविधियों का भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा, क्षेत्रीय संतुलन तथा सामरिक हितों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। भारत–चीन सीमा विवाद, हिंद-प्रशांत क्षेत्र में शक्ति प्रतिस्पर्धा तथा पड़ोसी देशों में चीन के बढ़ते निवेश ने भारत के समक्ष नई सुरक्षा चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। प्रस्तुत अध्ययन में चीन की विस्तारवादी नीति, उसके भू-राजनीतिक उद्देश्यों तथा भारत की सुरक्षा संबंधी चिंताओं का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords): चीन, विस्तारवाद, भारत, राष्ट्रीय सुरक्षा, BRI, CPEC, QUAD, हिंद-प्रशांत, दक्षिण चीन सागर।

1. परिचय (Introduction)

एशिया वर्तमान समय में वैश्विक राजनीति, अर्थव्यवस्था और सामरिक प्रतिस्पर्धा का प्रमुख केंद्र बन चुका है। चीन ने पिछले चार दशकों में तीव्र आर्थिक विकास, तकनीकी प्रगति तथा सैन्य आधुनिकीकरण के माध्यम से स्वयं को विश्व की प्रमुख शक्तियों में स्थापित किया है। चीन की बढ़ती शक्ति के साथ उसकी विदेश नीति अधिक सक्रिय एवं रणनीतिक होती गई है। दक्षिण चीन सागर में कृत्रिम द्वीपों का निर्माण, बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव, हिंद महासागर क्षेत्र में बंदरगाहों का विकास तथा सीमा क्षेत्रों में सैन्य गतिविधियों ने पड़ोसी देशों, विशेषकर भारत, जापान, वियतनाम और फिलीपींस की सुरक्षा चिंताओं को बढ़ाया है। भारत और चीन दोनों एशिया की प्रमुख शक्तियाँ हैं तथा दोनों के बीच सहयोग और प्रतिस्पर्धा साथ-साथ चलती रही है। ऐसे में चीन की नीतियों का भारत की विदेश नीति, रक्षा रणनीति तथा क्षेत्रीय सुरक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है।[1]

2. चीन की विस्तारवादी नीति : अवधारणा एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चीन की विस्तारवादी नीति (Expansionist Policy) से आशय उन राजनीतिक, सामरिक, आर्थिक तथा भू-राजनीतिक रणनीतियों से है, जिनके माध्यम से चीन अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करते हुए एशिया और विश्व में अपने प्रभाव क्षेत्र का निरंतर विस्तार करना चाहता है। विस्तारवाद केवल किसी क्षेत्र पर सैन्य नियंत्रण स्थापित करने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें आर्थिक निवेश, अवसंरचना निर्माण, समुद्री प्रभुत्व, प्रौद्योगिकी, कूटनीतिक प्रभाव तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में बढ़ती भूमिका भी सम्मिलित है। ऐतिहासिक रूप से चीन स्वयं को "मध्य साम्राज्य" के रूप में देखता रहा है, जहाँ यह धारणा रही कि चीन एशियाई सभ्यता का केंद्र है और उसके आसपास के क्षेत्र उसके प्राकृतिक प्रभाव क्षेत्र (Sphere of Influence) का हिस्सा हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी शक्तियों तथा जापान के हस्तक्षेप के कारण चीन को राजनीतिक एवं आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ा, जिसे चीनी इतिहास में "Century of Humiliation" कहा जाता है। 1949 में माओत्से तुंग के नेतृत्व में People's Republic of China (PRC) की स्थापना के बाद चीन ने अपनी क्षेत्रीय अखंडता और राष्ट्रीय एकीकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। इसी क्रम में 1950 में तिब्बत पर नियंत्रण स्थापित किया गया तथा बाद के वर्षों में शिनजियांग, आंतरिक मंगोलिया और सीमावर्ती क्षेत्रों पर प्रशासनिक पकड़ मजबूत की गई। 1962 का भारत–चीन युद्ध, दक्षिण चीन सागर में व्यापक समुद्री दावे, ताइवान को चीन का अभिन्न अंग घोषित करना तथा सेनकाकू (Diaoyu) द्वीपों पर जापान के साथ विवाद चीन की विस्तारवादी नीति के प्रमुख उदाहरण माने जाते हैं। इक्कीसवीं सदी में राष्ट्रपति शी जिनपिंग के नेतृत्व में "Chinese Dream", "National Rejuvenation" तथा "Great Power Diplomacy" जैसी अवधारणाओं ने चीन की वैश्विक महत्वाकांक्षाओं को नई दिशा प्रदान की है।[2] वर्तमान में चीन अपनी सैन्य शक्ति के आधुनिकीकरण, नौसैनिक विस्तार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी, साइबर क्षमता तथा वैश्विक अवसंरचना परियोजनाओं के माध्यम से विश्व राजनीति में प्रमुख शक्ति बनने का प्रयास कर रहा है। उसकी विदेश नीति में आर्थिक सहायता, विकास ऋण, बंदरगाह निर्माण, डिजिटल कनेक्टिविटी तथा रणनीतिक निवेश को प्रभाव विस्तार के प्रमुख साधन के रूप में प्रयोग किया जा रहा है।

* असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), स्वतंत्रता संग्राम सेनानी विश्राम सिंह, राजकीय पी0 जी0 कॉलेज चुनार, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश

[1] Pant, Harsh V. (2019). *Indian Foreign Policy: An Overview*. Manchester University Press.

[2] Garver, John W. (2001). *Protracted Contest: Sino-Indian Rivalry in the Twentieth Century*. University of Washington Press.

अनेक विद्वानों का मत है कि चीन की यह नीति केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य दीर्घकाल में एशिया में अमेरिकी प्रभाव को चुनौती देना तथा चीन-केंद्रित क्षेत्रीय व्यवस्था स्थापित करना भी है। इसलिए चीन की विस्तारवादी नीति समकालीन अंतरराष्ट्रीय राजनीति, सामरिक अध्ययन तथा भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बन चुकी है।[3]

3. एशिया में चीन का बढ़ता प्रभाव

पिछले तीन दशकों में चीन ने अपनी तीव्र आर्थिक वृद्धि, औद्योगिक उत्पादन, वैश्विक व्यापार, तकनीकी नवाचार तथा विशाल विदेशी निवेश के माध्यम से एशिया में अपना प्रभाव अभूतपूर्व रूप से बढ़ाया है। आज चीन विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होने के साथ-साथ एशिया के अधिकांश देशों का प्रमुख व्यापारिक भागीदार भी है। दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया, मध्य एशिया तथा पश्चिम एशिया के अनेक देशों में चीन ने बड़े पैमाने पर अवसंरचना परियोजनाओं, ऊर्जा संयंत्रों, रेलमार्गों, राजमार्गों, बंदरगाहों, औद्योगिक क्षेत्रों तथा डिजिटल नेटवर्क में निवेश किया है। पाकिस्तान में ग्वादर बंदरगाह, श्रीलंका का हम्बनटोटा बंदरगाह, म्यांमार का क्याउकफ्यू बंदरगाह, बांग्लादेश के चटगाँव क्षेत्र में निवेश तथा नेपाल में सड़क एवं रेल संपर्क परियोजनाएँ चीन की क्षेत्रीय रणनीति के प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त चीन एशियाई देशों को विकास ऋण, तकनीकी सहायता तथा दूरसंचार अवसंरचना उपलब्ध कराकर अपनी आर्थिक निर्भरता बढ़ाने का प्रयास कर रहा है।

Huawei, ZTE जैसी चीनी कंपनियाँ 5G नेटवर्क, डिजिटल संचार तथा स्मार्ट सिटी परियोजनाओं के माध्यम से अनेक देशों में अपनी उपस्थिति मजबूत कर चुकी हैं। चीन Asian Infrastructure Investment Bank (AIIB) तथा New Development Bank (NDB) जैसे बहुपक्षीय वित्तीय संस्थानों के माध्यम से भी क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके साथ ही वह कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), सेमीकंडक्टर, हरित ऊर्जा, इलेक्ट्रिक वाहन, अंतरिक्ष कार्यक्रम तथा डिजिटल अर्थव्यवस्था में भी अग्रणी बनने का प्रयास कर रहा है। हालांकि चीन के बढ़ते आर्थिक प्रभाव के साथ-साथ उसके राजनीतिक और सामरिक प्रभाव में भी वृद्धि हुई है, जिसके कारण अनेक एशियाई देशों में रणनीतिक निर्भरता बढ़ने की आशंका व्यक्त की जाती है। भारत, जापान, वियतनाम, फिलीपींस तथा ऑस्ट्रेलिया जैसे देश चीन की बढ़ती सैन्य क्षमता, समुद्री विस्तार तथा आक्रामक विदेश नीति को क्षेत्रीय स्थिरता के लिए चुनौती मानते हैं। परिणामस्वरूप एशिया में शक्ति संतुलन (Balance of Power) की राजनीति अधिक सक्रिय हो गई है तथा अनेक देशों ने अपनी सुरक्षा रणनीतियों, रक्षा साझेदारियों और कूटनीतिक नीतियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। इस प्रकार चीन का बढ़ता प्रभाव केवल आर्थिक विकास का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह एशिया की भू-राजनीति, क्षेत्रीय सुरक्षा तथा वैश्विक शक्ति संतुलन को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक बन चुका है।[4]

4. बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) और चीन की रणनीति

बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (Belt and Road Initiative—BRI) चीन की सबसे महत्वाकांक्षी वैश्विक रणनीतिक एवं आर्थिक परियोजना है, जिसकी घोषणा वर्ष 2013 में राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने की थी। इस पहल का उद्देश्य एशिया, यूरोप, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के अनेक देशों को सड़क, रेल, बंदरगाह, ऊर्जा गलियारों, पाइपलाइन, औद्योगिक पार्कों तथा समुद्री व्यापार मार्गों के माध्यम से जोड़ना है। BRI के दो प्रमुख घटक हैं—Silk Road Economic Belt तथा 21st Century Maritime Silk Road। आधिकारिक रूप से चीन इसे वैश्विक संपर्क (Connectivity), व्यापार, निवेश, आर्थिक विकास तथा साझा समृद्धि को बढ़ावा देने वाली परियोजना बताता है, किंतु अनेक अंतरराष्ट्रीय विश्लेषकों के अनुसार BRI का वास्तविक उद्देश्य चीन के दीर्घकालिक सामरिक एवं भू-राजनीतिक प्रभाव का विस्तार करना है। इस पहल के अंतर्गत चीन विभिन्न देशों में विशाल ऋण देकर अवसंरचना परियोजनाओं का निर्माण करता है, जिससे उन देशों की आर्थिक निर्भरता चीन पर बढ़ जाती है। श्रीलंका के हम्बनटोटा बंदरगाह का 99 वर्षों के लिए चीन को पट्टे पर दिया जाना, पाकिस्तान में China–Pakistan Economic Corridor (CPEC) का विकास, ग्वादर बंदरगाह, अफ्रीका के जिबूती में चीन का पहला विदेशी नौसैनिक अड्डा तथा हिंद महासागर क्षेत्र में बंदरगाहों का विकास इस रणनीति के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। भारत ने BRI में भाग लेने से स्पष्ट रूप से इंकार किया है क्योंकि इसका प्रमुख घटक CPEC पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (PoK) से होकर गुजरता है, जिसे भारत अपने संप्रभु क्षेत्र का अभिन्न भाग मानता है। भारत का मत है कि कोई भी अंतरराष्ट्रीय परियोजना संबंधित देशों की संप्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता, पारदर्शिता, वित्तीय उत्तरदायित्व तथा पर्यावरणीय मानकों का सम्मान किए बिना स्वीकार्य नहीं हो सकती। भारत सहित अनेक लोकतांत्रिक देशों का यह भी मानना है कि BRI के माध्यम से चीन केवल आर्थिक सहयोग नहीं, बल्कि दीर्घकालिक रणनीतिक प्रभाव, समुद्री पहुँच, ऊर्जा मार्गों पर नियंत्रण तथा वैश्विक शक्ति

---

[3] Rolland, Nadège. (2017). *China's Eurasian Century? Political and Strategic Implications of the Belt and Road Initiative*. National Bureau of Asian Research.

[4] Fravel, M. Taylor. (2008). *Strong Borders, Secure Nation: Cooperation and Conflict in China's Territorial Disputes*. Princeton University Press.

संतुलन में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास कर रहा है। इसलिए BRI आज केवल एक आर्थिक परियोजना नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय भू-राजनीति, समुद्री सुरक्षा और वैश्विक शक्ति प्रतिस्पर्धा का महत्वपूर्ण विषय बन चुका है।[5]

5. दक्षिण चीन सागर एवं पूर्वी चीन सागर विवाद

दक्षिण चीन सागर विश्व के सबसे महत्वपूर्ण समुद्री व्यापार मार्गों में से एक है। चीन "Nine-Dash Line" के आधार पर इस क्षेत्र के अधिकांश भाग पर दावा करता है, जबकि वियतनाम, फिलीपींस, मलेशिया, ब्रुनेई और ताइवान भी अपने-अपने दावे प्रस्तुत करते हैं। चीन द्वारा कृत्रिम द्वीपों का निर्माण, सैन्य अड्डों की स्थापना तथा नौसैनिक गतिविधियों में वृद्धि ने क्षेत्रीय तनाव बढ़ाया है। पूर्वी चीन सागर में सेनकाकू/दियाओयू द्वीपों को लेकर जापान और चीन के बीच विवाद भी क्षेत्रीय सुरक्षा का महत्वपूर्ण विषय है। इन घटनाओं का प्रभाव हिंद-प्रशांत क्षेत्र की सामरिक स्थिरता पर पड़ता है।[6]

6. भारत–चीन सीमा विवाद (LAC) एवं सुरक्षा चिंताएँ

भारत और चीन के मध्य लगभग 3,488 किलोमीटर लंबी वास्तविक नियंत्रण रेखा (Line of Actual Control—LAC) दोनों देशों के बीच सबसे जटिल सामरिक एवं राजनीतिक विवादों में से एक है। सीमा विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ब्रिटिश काल में निर्धारित मैकमोहन रेखा (McMahon Line), पश्चिमी क्षेत्र में अक्साई चिन, तथा पूर्वी क्षेत्र में अरुणाचल प्रदेश से जुड़ी है। चीन अरुणाचल प्रदेश के एक बड़े भाग को "दक्षिण तिब्बत" (South Tibet) बताकर उस पर दावा करता है, जबकि भारत अक्साई चिन को अपने केंद्रशासित प्रदेश लद्दाख का अभिन्न हिस्सा मानता है। वर्ष 1962 का भारत–चीन युद्ध दोनों देशों के संबंधों में एक निर्णायक मोड़ था, जिसके बाद सीमा विवाद लंबे समय तक बना रहा। यद्यपि 1993, 1996, 2005, 2012 तथा 2013 में सीमा पर शांति बनाए रखने हेतु अनेक समझौते हुए, फिर भी समय-समय पर दोनों देशों के बीच तनाव उत्पन्न होता रहा है। वर्ष 2017 का डोकलाम गतिरोध तथा 2020 की गलवान घाटी झड़प, जिसमें दोनों पक्षों के सैनिक हताहत हुए, ने यह स्पष्ट कर दिया कि सीमा विवाद आज भी दोनों देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती बना हुआ है। चीन द्वारा सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़कों, सुरंगों, हवाई पट्टियों, रेलवे नेटवर्क, मिसाइल प्रणालियों तथा सैन्य ढाँचे का तीव्र विकास भारत की सुरक्षा चिंताओं को बढ़ाता है। इसके प्रत्युत्तर में भारत ने सीमा अवसंरचना, उन्नत निगरानी प्रणाली, पर्वतीय स्ट्राइक कोर, आधुनिक हथियारों तथा सीमा सड़क संगठन (BRO) के माध्यम से रणनीतिक तैयारियों को सुदृढ़ किया है। वर्तमान परिस्थितियों में सीमा विवाद केवल क्षेत्रीय संप्रभुता का प्रश्न नहीं, बल्कि एशिया में शक्ति संतुलन, सामरिक स्थिरता तथा क्षेत्रीय सुरक्षा का महत्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है।[7]

7. हिंद महासागर क्षेत्र में चीन की बढ़ती उपस्थिति

हिंद महासागर विश्व व्यापार, ऊर्जा परिवहन तथा समुद्री सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। विश्व के लगभग दो-तिहाई तेल व्यापार तथा एक बड़ा भाग समुद्री वाणिज्य इसी क्षेत्र से होकर गुजरता है। चीन अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं एवं वैश्विक व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए हिंद महासागर क्षेत्र में निरंतर अपनी उपस्थिति बढ़ा रहा है। इस उद्देश्य से उसने पाकिस्तान के ग्वादर, श्रीलंका के हम्बनटोटा, म्यांमार के क्याउकफ्यू, बांग्लादेश के चटगाँव तथा अफ्रीका के जिबूती सहित अनेक बंदरगाहों के विकास में निवेश किया है। कई सामरिक विशेषज्ञ इन परियोजनाओं को "String of Pearls Strategy" का हिस्सा मानते हैं, जिसके माध्यम से चीन हिंद महासागर में बंदरगाहों और रसद सुविधाओं का नेटवर्क विकसित कर रहा है। इसके अतिरिक्त चीन की नौसेना (PLAN) ने हिंद महासागर में अपनी नियमित तैनाती, पनडुब्बियों की गतिविधियों, युद्धपोतों की गश्त तथा समुद्री निगरानी को भी बढ़ाया है। यह स्थिति भारत के लिए विशेष चिंता का विषय है क्योंकि हिंद महासागर भारत की समुद्री सुरक्षा, ऊर्जा आपूर्ति, व्यापारिक मार्गों तथा क्षेत्रीय प्रभाव का आधार है। परिणामस्वरूप भारत ने SAGAR (Security and Growth for All in the Region), Mission-Based Deployments, Information Fusion Centre–Indian Ocean Region (IFC-IOR) तथा मित्र देशों के साथ नौसैनिक अभ्यासों के माध्यम से अपनी समुद्री सुरक्षा को मजबूत किया है।[8]

8. चीन–पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) और भारत

चीन–पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (China–Pakistan Economic Corridor—CPEC) वर्ष 2015 में प्रारंभ की गई एक प्रमुख अवसंरचना परियोजना है, जो चीन के शिनजियांग प्रांत को पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह से जोड़ती है। यह परियोजना बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) का सबसे महत्वपूर्ण घटक मानी जाती है। CPEC में राजमार्ग, रेलवे, ऊर्जा परियोजनाएँ, औद्योगिक क्षेत्र तथा संचार अवसंरचना का विकास शामिल है। भारत इस परियोजना का लगातार विरोध करता

---

[5] Fravel, M. Taylor. (2008). *Strong Borders, Secure Nation: Cooperation and Conflict in China's Territorial Disputes*. Princeton University Press.

[6] Chellaney, Brahma. (2017). *Water, Peace, and War: Confronting the Global Water Crisis*. Rowman & Littlefield.

[7] Kissinger, Henry. (2011). *On China*. New York: Penguin Press.

[8] Malone, David M. (2011). *Does the Elephant Dance? Contemporary Indian Foreign Policy*. New Delhi: Oxford University Press.

रहा है क्योंकि इसका एक महत्वपूर्ण भाग पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (PoK) से होकर गुजरता है, जिसे भारत अपना अभिन्न क्षेत्र मानता है। भारत का तर्क है कि CPEC उसकी संप्रभुता एवं क्षेत्रीय अखंडता का उल्लंघन करता है। इसके अतिरिक्त ग्वादर बंदरगाह के विकास तथा चीन–पाकिस्तान की सामरिक साझेदारी से अरब सागर में चीन की समुद्री पहुँच बढ़ी है, जिससे भारत की पश्चिमी समुद्री सुरक्षा पर भी प्रभाव पड़ सकता है। अनेक विशेषज्ञों का मत है कि भविष्य में CPEC आर्थिक परियोजना के साथ-साथ सामरिक सहयोग का भी आधार बन सकता है। इसलिए भारत इस परियोजना को केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि अपनी दीर्घकालिक राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में भी देखता है।[9]

9. इंडो-पैसिफिक रणनीति एवं QUAD की भूमिका

इंडो-पैसिफिक (Indo-Pacific) अवधारणा इक्कीसवीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण भू-राजनीतिक रणनीतियों में से एक बन चुकी है। इसका उद्देश्य हिंद महासागर और प्रशांत महासागर को एक संयुक्त सामरिक क्षेत्र के रूप में देखते हुए स्वतंत्र, खुला, समावेशी तथा नियम-आधारित समुद्री व्यवस्था को बनाए रखना है। चीन की बढ़ती सैन्य एवं समुद्री गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में भारत, अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया ने Quadrilateral Security Dialogue (QUAD) को पुनः सक्रिय किया। QUAD का मुख्य उद्देश्य समुद्री सुरक्षा, आपदा प्रबंधन, साइबर सुरक्षा, महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी, आपूर्ति श्रृंखला, जलवायु परिवर्तन तथा मुक्त नौवहन को बढ़ावा देना है। भारत QUAD को किसी सैन्य गठबंधन के रूप में नहीं, बल्कि समान विचार वाले लोकतांत्रिक देशों के सहयोगात्मक मंच के रूप में देखता है। नियमित नौसैनिक अभ्यास मालाबार (Malabar Exercise), समुद्री निगरानी तथा तकनीकी सहयोग इस साझेदारी को और मजबूत कर रहे हैं। QUAD ने हिंद-प्रशांत क्षेत्र में शक्ति संतुलन बनाए रखने तथा क्षेत्रीय स्थिरता को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। [10]

10. भारत की सामरिक एवं कूटनीतिक प्रतिक्रिया

चीन की बढ़ती सामरिक सक्रियता के उत्तर में भारत ने बहुआयामी रणनीति अपनाई है। एक ओर भारत ने सीमावर्ती क्षेत्रों में अवसंरचना विकास, आधुनिक सैन्य उपकरणों की खरीद, स्वदेशी रक्षा उत्पादन, मिसाइल क्षमता तथा वायु एवं नौसेना के आधुनिकीकरण पर विशेष बल दिया है, वहीं दूसरी ओर उसने कूटनीतिक स्तर पर अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, वियतनाम तथा आसियान देशों के साथ रणनीतिक साझेदारी को मजबूत किया है। भारत की Neighbourhood First Policy, Act East Policy, SAGAR, Indo-Pacific Oceans Initiative (IPOI) तथा Mission LiFE जैसी पहलें उसकी व्यापक विदेश नीति का हिस्सा हैं। साथ ही भारत BRICS, SCO, G20 तथा संयुक्त राष्ट्र जैसे बहुपक्षीय मंचों पर भी सक्रिय भूमिका निभाकर रणनीतिक स्वायत्तता (Strategic Autonomy) बनाए रखने का प्रयास कर रहा है। भारत का उद्देश्य किसी टकराव को बढ़ावा देना नहीं, बल्कि नियम-आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था, क्षेत्रीय स्थिरता तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को प्रोत्साहित करना है।[11]

11. चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ

भारत के समक्ष चीन से संबंधित चुनौतियाँ केवल सीमा विवाद तक सीमित नहीं हैं। तकनीकी प्रतिस्पर्धा, साइबर सुरक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, आपूर्ति श्रृंखला, समुद्री सुरक्षा, व्यापार असंतुलन, पड़ोसी देशों में चीन का बढ़ता प्रभाव तथा अंतरिक्ष एवं डिजिटल प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा भी भविष्य की महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन, वैश्विक आर्थिक अनिश्चितता तथा उभरती बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था भारत और चीन दोनों के लिए सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा के मिश्रित अवसर प्रस्तुत करती है। यदि दोनों देश सीमा विवाद के शांतिपूर्ण समाधान, आर्थिक सहयोग तथा विश्वास निर्माण के उपायों को आगे बढ़ाते हैं तो एशिया में स्थिरता और विकास की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं। इसके विपरीत यदि सामरिक प्रतिस्पर्धा और अविश्वास बढ़ता है तो क्षेत्रीय सुरक्षा वातावरण और अधिक जटिल हो सकता है।

12. सुझाव

एशिया में चीन की बढ़ती सामरिक, आर्थिक तथा भू-राजनीतिक सक्रियता को देखते हुए भारत को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा एवं विदेश नीति को और अधिक सुदृढ़ एवं बहुआयामी बनाना आवश्यक है। सर्वप्रथम, भारत को वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर सड़क, सुरंग, पुल, हवाई पट्टियों तथा संचार नेटवर्क जैसी सीमा अवसंरचना का तीव्र विकास करना चाहिए, जिससे सैन्य तैनाती और आपूर्ति प्रणाली अधिक प्रभावी बन सके। रक्षा क्षेत्र में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देते हुए आधुनिक हथियारों, ड्रोन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, साइबर सुरक्षा तथा अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में निवेश बढ़ाना समय की आवश्यकता है। हिंद महासागर क्षेत्र में भारत को अपनी नौसैनिक क्षमता, समुद्री निगरानी प्रणाली तथा तटीय सुरक्षा को और मजबूत करना चाहिए तथा SAGAR, Indo-Pacific Oceans Initiative (IPOI) और Information Fusion Centre–Indian Ocean Region (IFC-IOR) जैसी पहलों को व्यापक स्तर पर क्रियान्वित करना चाहिए। साथ ही QUAD, BIMSTEC, ASEAN,

---

[9] Small, Andrew. (2015). *The China–Pakistan Axis: Asia's New Geopolitics*. London: Hurst Publishers.

[10] Pant, Harsh V. (Ed.). (2020). *The Rise of the Indo-Pacific: Perspectives, Dimensions and Challenges*. London: Routledge.

[11] Malone, David M. (2011). *Does the Elephant Dance? Contemporary Indian Foreign Policy*. New Delhi: Oxford University Press.

IORA तथा अन्य क्षेत्रीय संगठनों के साथ रणनीतिक सहयोग को सुदृढ़ कर क्षेत्रीय संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। पड़ोसी देशों के साथ व्यापार, विकास सहयोग, डिजिटल संपर्क और अवसंरचना निवेश बढ़ाकर भारत को चीन के बढ़ते प्रभाव का सकारात्मक एवं रचनात्मक विकल्प प्रस्तुत करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, भारत को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में अपनी भागीदारी बढ़ाने, आर्थिक प्रतिस्पर्धात्मकता को सुदृढ़ करने, अनुसंधान एवं नवाचार को प्रोत्साहित करने तथा प्रभावी कूटनीतिक संवाद के माध्यम से सीमा विवादों का शांतिपूर्ण समाधान खोजने का निरंतर प्रयास करना चाहिए। इन उपायों से भारत अपनी सामरिक स्वायत्तता बनाए रखते हुए क्षेत्रीय स्थिरता, राष्ट्रीय सुरक्षा और दीर्घकालिक विकास को सुनिश्चित कर सकेगा।

13. निष्कर्ष

चीन की विस्तारवादी नीति ने इक्कीसवीं सदी की एशियाई एवं वैश्विक राजनीति को गहराई से प्रभावित किया है। बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI), दक्षिण चीन सागर में बढ़ती सैन्य सक्रियता, हिंद महासागर क्षेत्र में रणनीतिक उपस्थिति, चीन–पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) तथा भारत–चीन सीमा विवाद जैसी घटनाएँ यह दर्शाती हैं कि चीन केवल आर्थिक शक्ति के रूप में ही नहीं, बल्कि एक व्यापक सामरिक एवं भू-राजनीतिक शक्ति के रूप में अपनी भूमिका को निरंतर विस्तार दे रहा है। इन परिस्थितियों ने भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा, समुद्री हितों, सीमा प्रबंधन तथा विदेश नीति के समक्ष नई चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। भारत ने इन चुनौतियों का सामना करने के लिए सीमा अवसंरचना के विकास, रक्षा आधुनिकीकरण, रणनीतिक साझेदारियों, इंडो-पैसिफिक सहयोग, QUAD में सक्रिय भागीदारी तथा बहुपक्षीय कूटनीति जैसे अनेक प्रभावी कदम उठाए हैं। भविष्य में भारत के लिए यह आवश्यक होगा कि वह अपनी आर्थिक शक्ति, तकनीकी क्षमता, सैन्य तैयारी और कूटनीतिक सक्रियता के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए रणनीतिक स्वायत्तता को बनाए रखे। साथ ही संवाद, विश्वास-निर्माण और अंतरराष्ट्रीय कानूनों के सम्मान पर आधारित नीति अपनाकर भारत न केवल अपनी संप्रभुता और राष्ट्रीय हितों की रक्षा कर सकता है, बल्कि एशिया में शांति, स्थिरता और सहयोग को भी सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य में अयोध्या पुरी का सांस्कृतिक इतिहास

छाया यादव*

प्रस्तावना

अयोध्या, भगवान श्रीराम की जन्मभूमि, अपनी प्राचीनता और धार्मिक विविधता के कारण भारत की एक प्रमुख सांस्कृतिक धरोहर है। यह नगर न केवल हजारों हिंदू मंदिरों से सुशोभित है, बल्कि बौद्ध एवं जैन धर्म से भी गहराई से जुड़ा हुआ है, जिससे इसे विभिन्न संस्कृतियों का केंद्र माना जाता है। अयोध्या को 'अज्ञेय' अर्थात 'जहाँ युद्ध न हुआ हो' कहा जाता है, साथ ही इसे साकेतपुरी और इक्ष्वाकु वंश की राजधानी के रूप में भी जाना जाता है। वैदिक काल में यह हिंदू धर्म के केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, बौद्ध काल में एक प्रमुख तीर्थस्थल रहा, और जैन धर्म में इसे कई तीर्थंकरों की जन्मस्थली के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। इन सभी पहलुओं के कारण अयोध्या का सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व अपार है।

अयोध्या, जिसे विभिन्न युगों और परंपराओं में अनेक नामों से संबोधित किया गया है, भारतीय सभ्यता की धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर का एक अनमोल रत्न है। जैन एवं बौद्ध ग्रंथों में इसे कोशल, विनीता, रामपुरी, पिशोकिया, अयूटो और अज्जोझा जैसे विविध नामों से वर्णित किया गया है, जो इसकी समृद्ध विरासत को दर्शाते हैं। कभी कोशल की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित, तो कभी साकेत और श्रावस्ती से जुड़ी, यह नगरी भारतीय संस्कृति के विकास में सदियों से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है।

अयोध्या का उल्लेख वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य में व्यापक रूप से मिलता है,जो इसके आध्यात्मिक और ऐतिहासिक महत्व को प्रमाणित करता है। वैदिक ग्रंथों में, विशेष रूप से अथर्ववेद में,अयोध्या को एक पवित्र नगरी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है,जहाँ मानव शरीर को ही देवताओं की पुरी 'अयोध्या' के रूप में निरूपित किया गया है। बौद्ध साहित्य में इसे बुद्धकालीन भारत के एक प्रमुख नगर के रूप में दर्शाया गया है,जबकि जैन ग्रंथों में इसे अनेक तीर्थंकरों की जन्मस्थली और जैन धर्म के प्रमुख तीर्थस्थलों में से एक के रूप में विशेष स्थान प्राप्त है।

इस शोध पत्र के उद्देश्य की पूर्ति हेतु– प्राथमिक आंकड़ों के अंतर्गत वेद और विभिन्न ऐतिहासिक ग्रंथों का अध्ययन किया। द्वितीयक आंकड़े के रूप में मैंने शोधकर्ताओं के अन्वेषणात्मक तत्वों का अवलोकन किया और इस प्रकार इस शोध पत्र के माध्यम से वैदिक, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में उल्लिखित अयोध्या के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व पर गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है,जिससे इसकी बहुआयामी विरासत और प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्द– वैदिक, बौद्ध ,जैन, अयोध्या, साहित्य, तीर्थंकर, साकेतपुरी और इक्ष्वाकुवंशीय।

अयोध्या भारतीय इतिहास और संस्कृति का एक स्वर्णिम अध्याय है, जिसका उल्लेख विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न[1] नामों से किया गया है। इसे अयोज्झा, अयुज्झापुर, उज्झा, अ–यु–ज, अयुधा, अजोदह और अवध जैसे नामों से जाना गया है, हालांकि संस्कृत ग्रंथों में यह प्रायः 'अयोध्या' नाम से ही प्रसिद्ध है। वैदिक साहित्य, विशेष रूप से वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद), में न तो कोशल राज्य का उल्लेख मिलता है और न ही उसकी राजधानी अयोध्या का। हालांकि, ऋग्वेद में सरयू नदी का उल्लेख किया गया है, जो अयोध्या के भौगोलिक अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण प्रमाण है। ऋग्वेद में सरयू का उल्लेख सरस्वती और सिंधु नदियों के साथ किया गया है, जो इसकी पवित्रता और सांस्कृतिक महत्ता को दर्शाता है।

ऋग्वेद के एक मंत्र में यदु और तुर्वश द्वारा इंद्र की सहायता से नदी पार कर सरयूपार के क्षेत्र में अर्ण और चित्ररथ को परास्त करने का उल्लेख मिलता है, जिसे विद्वान प्राचीनतम सरयूपार क्षेत्र का प्रमाण मानते हैं। डॉ. ठाकुर प्रसाद वर्मा के अनुसार,यह सरयूपार क्षेत्र का प्राचीनतम साक्ष्य हो सकता है। ऋग्वेद के दसवें मंडल में भी सरयू, सरस्वती और सिंधु नदियों का उल्लेख सात–सात सहायक नदियों सहित किया गया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि ऋग्वेद में वर्णित सरयू नदी कोई और नहीं, बल्कि वर्तमान उत्तर प्रदेश की सरयू नदी ही है, न कि पंजाब, अफगानिस्तान या ईरान की कोई नदी। इस नदी का उल्लेख इस तथ्य को

* शोधार्थी, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रमाणित करता है कि सरयूपार का क्षेत्र वैदिक काल में मानव सभ्यता द्वारा विकसित था और इसका इतिहास अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध है।

ऋग्वेद में कोसल जनपद का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता, किंतु इसके महान शासकों जैसे इक्ष्वाकु और मान्धाता का वर्णन अवश्य किया गया है। ये नाम बाद की परंपराओं में निरंतर उल्लिखित होते रहे हैं, जो कोसल जनपद और इसकी प्राचीनता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। अयोध्या[2] का स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है, जहाँ इसे देवताओं की पुरी के रूप में निरूपित किया गया है और मानव शरीर को अयोध्या की संज्ञा दी गई है। यह संकेत करता है कि अयोध्या केवल एक भौगोलिक स्थल ही नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक प्रतीक भी रही है।

उत्तर वैदिक काल में शतपथ ब्राह्मण में सदानीरा (गंडक नदी) को कोसल और विदेह की सीमा बताया गया है, जिससे संकेत मिलता है कि अथर्ववेद की रचना के बाद कोसल जनपद का नाम और महत्व व्यापक रूप से स्थापित हो चुका था। महाकाव्यों और पुराणों में केवल कोसल के नाम का उल्लेख नहीं है बल्कि विस्तृत विवरण उपलब्ध है जो इस क्षेत्र के इतिहास और सांस्कृतिक महत्त्व को भी दर्शाता है। वेदों में अयोध्या और श्रीराम के उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अयोध्या और भगवान श्रीराम का अस्तित्व वैदिक युग से भी पूर्व का रहा होगा।

महाभारत और रामायण दोनों में अयोध्या का उल्लेख मिलता है। महाभारत में इसे इक्ष्वाकु वंश की राजधानी के रूप में वर्णित किया गया है, जबकि रामायण इसे सरयू तट पर स्थित एक संपन्न और भव्य नगर के रूप में प्रस्तुत करता है। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में अयोध्या और साकेत को समानार्थी रूप में प्रयोग किया है, जिससे इसकी प्राचीनता और सांस्कृतिक महत्ता स्पष्ट होती है। मत्स्य और वायु पुराण में इसे इक्ष्वाकुओं की राजधानी बताया गया है, जबकि वृहत्संहिता में उल्लेख मिलता है कि भगवान राम के पुत्र कुश ने इसे पुनः बसाया था।

इन सभी प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि अयोध्या न केवल वैदिक काल में बल्कि उत्तरवर्ती साहित्य, महाकाव्यों और पुराणों में भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और धार्मिक नगर के रूप में प्रतिष्ठित रही है।

बौद्ध, जैन ग्रंथों और मध्यकालीन संस्कृत वाङ्मय में अयोध्या के लिए 'साकेत' शब्द का व्यापक रूप से प्रयोग किया गया है।[3] महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में राजधानी के लिए रघुवंश के दसवें सर्ग में उन्होंने इसे 'अयोध्या'[4] कहा है, जबकि सोलहवें सर्ग में 'साकेत'[5] शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट होता है कि अयोध्या को ही साकेत कहा जाता था और दोनों नाम एक ही नगर के पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होते थे।

बौद्ध पालि ग्रंथों में अयोध्या का उल्लेख अयोज्झा और अयुज्झा नामों से किया गया है। इन ग्रंथों में कोशल जनपद की महत्ता को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। सुमंगल विलासिनी टीका के अनुसार, इस भू–भाग में कोशल देश के राजकुमारों का निवास था, जिसके कारण इसे 'कोशल' नाम से जाना गया।[6] बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध टीकाकार बुद्धघोष ने भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया है, जिससे कोशल जनपद की ऐतिहासिक और राजनीतिक स्थिति को और अधिक स्पष्टता मिलती है।

भगवान बुद्ध के समय में भारत का राजनीतिक केंद्र मुख्य रूप से उत्तर भारत था।[7] उस काल में उत्तर भारत में चौदह प्रमुख राज्यों का उल्लेख मिलता है, जिनमें दस गणराज्य और चार शक्तिशाली राजतंत्र थे, जो इस प्रकार है- मगध, कोशल, वत्स और अवंती।[8] इन राज्यों में कोशल का महत्वपूर्ण स्थान था, जो न केवल राजनीतिक दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से भी अत्यंत प्रभावशाली था।

इन सभी प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि अयोध्या, जिसे साकेत भी कहा जाता था, प्राचीन भारत के धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है।

कोशल उत्तर–पूर्व भारत का एक प्रमुख एवं शक्तिशाली राज्य था, जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी।[9] महात्मा बुद्ध के समय से पूर्व ही कंस नामक राजा ने काशी राज्य पर विजय प्राप्त की थी। जातक ग्रंथों में कंस को 'बरानानसिग्गहो' अर्थात बनारस पर अधिकार करने वाला कहा गया है। कंस के उत्तराधिकारी, महाकोशल के शासनकाल में कोशल का काशी पर पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया। इस काल में मगध राज्य कोशल का प्रमुख प्रतिद्वंद्वी था, और दोनों के मध्य वैमनस्य का मुख्य कारण काशी का नियंत्रण था, क्योंकि इसकी सीमाएँ कोशल एवं मगध दोनों को स्पर्श करती थीं।

महात्मा बुद्ध के समय कोशल पर राजा प्रसेनजीत का शासन था, जिनका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। बौद्ध ग्रंथों में अयोध्या को 'साकेत' और 'विशाखा' नामों से भी जाना गया है। दिव्यावदान में साकेत नाम की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

स्वयंमागतं स्वयमागत साकेत साकेत मिति संज्ञा संवृता, अर्थात, यह नगर स्वयं आया, स्वयं आया, इसलिए इसका नाम 'साकेत'पड़ा।[10] यह व्याख्या अयोध्या की ऐतिहासिक महत्ता को रेखांकित करती है।

चीनी यात्री फाह्यान ने भी साकेत का उल्लेख किया है और इसका चीनी अनुवाद 'शाची' किया है। फाह्यान के अनुसार,यहाँ से तीन योजन दक्षिण–पूर्व में एक विशाल राज्य स्थित था। उन्होंने अयोध्या अथवा शाची को बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल बताया है।

बौद्ध धर्म के साथ–साथ जैन धर्म में भी अयोध्या का विशेष स्थान रहा है। जैन परंपरा के अनुसार, चौबीस तीर्थंकरों में से बाईस तीर्थंकर इक्ष्वाकु वंश से संबंधित थे, जिनमें प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभदेव) एवं चार अन्य तीर्थंकरों का जन्म अयोध्या में ही हुआ था। महायान संप्रदाय के महान आचार्य वसुबंधु भी अयोध्या में निवास करते थे। इसके अतिरिक्त, भगवान बुद्ध ने अयोध्या के अंजनबाग क्षेत्र में बौद्ध धर्म के कुछ महत्वपूर्ण सूत्रों का उपदेश भी दिया था।

बौद्ध मत की दृष्टि से कोशल को ही इसकी जन्मभूमि माना जाना चाहिए, क्योंकि गौतम बुद्ध की जन्मस्थली कपिलवस्तु और निर्वाणस्थली कुशीनगर दोनों ही कोशल राज्य के अंतर्गत थे।[11] अयोध्या न केवल उनका प्रवचन स्थल रहा, बल्कि यहीं पर उन्होंने अपने सिद्धांतों की स्थापना की, जिनसे बौद्ध धर्म विश्वविख्यात हुआ। कुशीनगर में उन्हें वह परम अवस्था प्राप्त हुई, जिसे बौद्ध मतानुयायी निर्वाण कहते हैं।

गौतम बुद्ध के काल में साकेत (अयोध्या) एक समृद्ध और विशाल नगर बन चुका था। इसका प्रमाण यह है कि बुद्ध ने इस नगर की कई बार यात्रा की और यहाँ ठहरे भी। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार, साकेत में अंजनयन और तिकण्डकिवन जैसे स्थानों पर बुद्ध के निवास का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, यहाँ कालाकाराम नामक विहार स्थित था, जो उनके प्रमुख शिष्यों के निवास का स्थान था। बुद्ध स्वयं भी कालाकाराम में ठहरे थे, जिससे यह स्थान बौद्ध धर्म के लिए विशेष महत्व रखता है।

जैन परंपरा में अयोध्या का स्थान

प्रारंभिक जैन प्राकृत ग्रंथों में अयोध्या को 'अयुज्झा', जबकि उत्तरकालीन जैन ग्रंथों में 'अयुज्झा'और उज्झा दोनों नामों से संदर्भित किया गया है। उत्तरकालीन जैन ग्रंथों, जैसे अवस्गचूर्णि और अवस्सनिज्जुति, में अयोध्या को सायेय और साकेत नामों से भी पुकारा गया है। जैन परंपरा में अयोध्या के कई अन्य नाम मिलते हैं, जिनमें प्रमुख रूप से- इक्खागभूमि कोसल, विनीता, रमपुरी और पदमपुरी आदि।

प्रसिद्ध जैन ग्रंथ कल्पसूत्र में कोशल प्रदेश को ऋषभदेव तीर्थंकर की भूमि के रूप में स्वीकार किया गया है, जहाँ इक्खागभूमि का उल्लेख मिलता है। चौथी शताब्दी ईस्वी के प्रारंभिक जैन प्राकृत ग्रंथ पौमचरिय में अयोध्या को इक्ष्वाकु वंश के राजा अजित की राजधानी और भरत (भारत) की नगरी बताया गया है। इसी ग्रंथ में अयोध्या को कोसल तथा साकेत के पर्यायवाची रूप में भी उल्लिखित किया गया है।

जैन प्राकृत ग्रंथों में कोशल और अयोध्या के महत्त्व को गहराई से दर्शाया गया है। पन्नवना और नायाधम्मकहाओ ग्रंथों में कोशल की राजधानी साकेत को बताया गया है, जबकि उत्तरकालीन जैन ग्रंथ अवस्सगचूर्णि में अयुज्जा (अयोध्या) को कोशल की प्रधान नगरी के रूप में उल्लिखित किया गया है। इसी प्रकार, अवस्सगनिज्जुति में कोशल को कोसलपुर कहा गया है और इसे चौथे तीर्थंकर सुमै की राजधानी के रूप में वर्णित किया गया है।चतुर्थ शताब्दी ईस्वी के प्रारंभिक जैन प्राकृत ग्रंथ पौमचरिय में अयोध्या के पर्यायवाची नामों के रूप में कोसलपुरी, कोसला और कोसलानगरी का उल्लेख मिलता है। यह स्पष्ट करता है कि जैन परंपरा में कोशल और अयोध्या एक ही सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग थे।

जैन–तीर्थंकर एवं रामायण में अयोध्या

[12]रामायण के उत्तरकांड में यह उल्लेख मिलता है कि श्रीराम के स्वर्गारोहण के पश्चात रमणीय अयोध्या पुरी अनेक वर्षों तक सूनी रही और बाद में राजा ऋषभ के शासनकाल में यह पुनः आबाद हुई। जैन परंपरा के अनुसार, सभी तीर्थंकर अयोध्या में जन्म लेते और यहीं राज्य करते हैं, परंतु चौबीस तीर्थंकरों में से केवल पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि अयोध्या मानी जाती है, जो इस प्रकार हैं-1.आदिनाथ अथवा ऋषभनाथ, 2. अजितनाथ, 3. अभिनन्दननाथ, 4. सुमन्तनाथ और 5. अनन्तनाथ। इसके अतिरिक्त, यह भी उल्लेखनीय है कि सभी चौबीस तीर्थंकरों को इक्ष्वाकु वंशीय माना गया है।

ऋषभदेव, भारतीय संस्कृति के आद्य प्रवर्तक

ऋषभदेव के ऐतिहासिक और पौराणिक साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि अयोध्या वाराणसी से भी अधिक प्राचीन नगरी थी, और यहीं से भारतीय संस्कृति का उद्गम हुआ था। जैन धर्म के महान अवतारी संत ऋषभदेव का जन्म अयोध्या में हुआ था, और वे भारत में ईश्वर के आठवें अवतार माने जाते हैं। उन्होंने मानव समाज को भोगवादी संस्कृति से दूर रहने की प्रेरणा दी तथा कुबेर को धन–संग्रह से विरक्त रहने का परामर्श दिया।[13] [14]आधुनिक शोधकर्ताओं ने भी ऋषभदेव को मानव सभ्यता का आद्य प्रस्तोता माना है। उन्होंने समाज को एक नैतिक एवं संयमित जीवन जीने की शिक्षा दी, जिससे भारतीय सभ्यता को एक ठोस आधार प्राप्त हुआ।

निष्कर्ष– अयोध्या का सांस्कृतिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व अनंतकाल से अद्वितीय एवं समृद्ध रहा है। वैदिक युग में यह सनातन धर्म का केंद्र बना, जहाँ से इक्ष्वाकु वंश की गौरवशाली परंपरा का आरंभ हुआ। बौद्ध काल में यह नगर गौतम बुद्ध के आगमन और उनके उपदेशों का साक्षी बना, जबकि जैन परंपरा में इसे अनेक तीर्थंकरों की जन्मभूमि के रूप में विशेष स्थान प्राप्त हुआ। अयोध्या केवल एक ऐतिहासिक नगर भर नहीं है, बल्कि यह भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। विभिन्न कालखंडों में इसने धर्म, संस्कृति और परंपराओं को एक सूत्र में पिरोया है, जिससे इसकी महत्ता और अधिक स्पष्ट होती है। इस प्रकार, अयोध्या न केवल भारत की ऐतिहासिक धरोहर का एक अभिन्न अंग है, बल्कि विश्व सभ्यता के लिए भी एक अनमोल सांस्कृतिक धरोहर बनी हुई है।

संदर्भ –

1. फैजाबाद सांस्कृतिक गजेटियर–पृष्ठ सं.–32–33।
2. साक्षी–अंक–2–कोसल का इतिहास एवं संस्कृति–अयोध्या का इक्ष्वाकु वंश–पृष्ठ सं.–77–78।
3. विविधतीर्थकल्प, पृ. 24 ।
4. पुरमविशदयोध्यां मैथिली दर्शिनीनाम। रघुवंश, सर्ग, 10, श्लोक 96 ।
5. साकेतनायो ज्जलिभि प्रणेयुः। रघुवंश सर्ग 16, श्लोक 13 ।
6. सुमंगल विशाशिनी की टीका, कोशलानाम जनपदीनों राजकुमारा, तेषाम का निवासो एकोवपि रूल्ही सादेन कोशलाति उच्चति ।
7. शोध पत्र–अयोध्या अतीत से वर्तमान तकः एक ऐतिहासिक अनुशीलन, सन्तोष कुमार झा एवं ''प्रो० एन०के० तिवारी ISSN 0973–8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.18, NO.1, JAN-JUNE, 2023/76 ।
8. पाण्डेय, राजबली, उपरोक्त पृ. 96।
9. नन्दूलाल डे, दि ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐश्येन्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया, पृ. 14।
10. नागर, अमृतलाल, गदर के फूल, सूचना विभाग, लखनऊ, उ०प्र० पृ. 56।
11. राम राज्य आधुनिक परिवेश में न्यायमूर्ति देवी प्रसाद सिंह ,अध्याय– अयोध्या कल और आज, पृष्ठ 35।
12. फैजाबाद सांस्कृतिक गजेटियर–पृष्ठ सं.–35–361
13. कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह ऋषभदेव महाकाव्य।
14. लेखक/कवि–कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह ऋषभदेव महाकाव्य–पृष्ठ सं.–504–510।

भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि : जैन कथा साहित्य

डॉ. सौरभ चौधरी*

छठीं शताब्दी ई0 पू0 महावीर स्वामी ने जैन धर्म को एक महत्वपूर्ण आयाम प्रदान करने का कार्य किया। अपने जीवन काल में उन्होनें भारत के विभिन्न क्षेत्रों में घूम–घूम कर जनमानस को जैन धर्म में दीक्षित किया तथा बड़ी मात्रा में अपने उपदेशों के माध्यम से लोगों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाए। निवृत्तिपरक धार्मिक उपदेशों को मनोरम शैली में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचारित करने का कार्य किया। महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात जैन आचार्यो ने अपने वाड्.मय में कथा विद्या के रुप में आवलम्बित करने का कार्य किया। जैन आचार्यों के द्वारा सर्वप्रथम प्राकृत भाषा में अपनी रचनाओं को निबद्ध किया। प्राकृत भाषा बहुत लम्बें समय तक संस्कृत साहित्य के साथ विकसित होती रही थी। भारतीय जनजीवन के धर्म, संस्कृति एवं समाज को निरन्तर प्रभावित करने का कार्य इस भाषा के द्वारा किया जाता रहा। यही कारण है कि उस समय प्राकृत को लोकभाषा के रुप में मान्यता प्राप्त थी। जैन धार्मिक साहित्य को मूल रुप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक तरफ जैन साहित्य आगमिक तथा अन्वागमिक साहित्य के रुप में विकसित हुआ, तो दूसरी तरफ आगमेत्तर साहित्य के अनुयोगों नामक विशेष व्याख्यान पद्धति के रुप में प्रवाहित हुयी। इसके अतिरिक्त जैन साहित्य में महाकाव्य, उपदेश, नीति, निबन्ध, कथा साहित्य एवं उपन्यास के रुप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं, उस समय में प्रचलित सभी विधाओं में रचनाएँ प्रस्तुत की। जैन मनीषियों के द्वारा प्रारम्भ में प्राकृत तथा उसके पश्चात संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषाओं में रचनाओं की सृष्टि की तथा अपनी प्रतिभा के माध्यम से उसको संवारने का कार्य किया।

जैन कथा साहित्य भारतीय संस्कृति के अमूल्य निधि के रुप में स्वीकार किया जा सकता है। इन कथा साहित्यों में न केवल धार्मिक एवं दार्शनिक विषयों को सुलझाने का कार्य किया गया, वरन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं कलात्मक विषयों का भी गहन विश्लेषण किया गया है। नीति कथा, लोक कथा, पशु – पक्षी कथा, भावात्मक ध्वनि कथा, धर्म अर्थ काम कथा, पुरातन कथा, दैवताकथा, परीकथा जैसे स्वरुपों में जैन कथा प्राप्त होती है।[1]

जैन कथा साहित्य का मूल बीजारोपण आगमों में मिलता है। परवर्ती काल मे इनका विकास निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि तथा टीकाओं में हुआ। आगम को सिद्धान्त या सूत्र के नाम से भी जाना जाता है। सिद्धान्त के प्रत्येक ग्रन्थ को सूत्र के नाम से अभिहित किया जाता है। "वल्लभी में हुए जैन सम्मेलन में जैन साहित्य को 12 अंग, 12 उपांग, 6 छेदसूत्र, 4 मूलसूत्र, 10 प्रकीर्ण तथा 2 चूलिका सूत्र में विभाजित किया गया। प्राकृत आगम साहित्य में धार्मिक आचार, आध्यात्मिक तत्व चिन्तन तथा नीति एवं कर्तव्य का निरुपण प्रेम कथाओं के माध्यम से किया गया है।[2] दर्शन की गूढ़तम विचारों, समस्याओं एवं गहन अनुभूतियों को सरलतम रुप में मानव जीवन तक पहुँचाने के लिए तीर्थंकरों, गणधरों एवं आचार्यों ने इन्ही कथाओं को आधार रुप में स्वींकार करने का कार्य किया।

जैन साहित्य में मानव जन्म की दुर्लभता का प्रतिपादन करने के लिए चोल्लक, पाशक इत्यादि दस दृष्टान्तों का प्रयोग किया गया है। इसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध मधुबिन्दु दृष्टांत है, जो कि श्रमण काव्य के प्रतीक के रुप में प्रयोग किया जाता है। इस कथा का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है, जिससे इसकी लोकप्रियता का पता चलता है। कथा इस प्रकार से है कि "एक व्यक्ति जंगल में जा रहा था, रास्ते में उसे एक व्याघ्र दिखाई देता है, जिससे बचने के लिए वह एक वृक्ष पर चढ़ जाता है। उस वृक्ष की शाखा पकड़कर वह अधर में लटक जाता है। जिस शाखा पर वह लटका है, उसके नीचें एक कुआँ है, जिसमें एक सर्प बैठा हुआ है। चूहे वृक्ष की जड़ों को काटने का कार्य कर रहे है। वृक्ष पर एक मधुमक्खी का छत्ता लगा हुआ है, जहाँ से थोडी – थोड़ी देर के बाद शहद की बूँदे टपक कर उसके मस्तक पर गिरकर उसके होठों तक आ रही है। शहद की बूँदों को चाट – चाट कर वह अपार आनन्द का अनुभव कर रहा है।[3] इस कथा में व्याघ्र मृत्यु का प्रतीक है, सर्प दुःख है, कुआँ यह संसार है, वृक्ष आशा का प्रतीक है। चूहे विघ्न बाधा उत्पन्न करने वाले हैं

* सहायक अध्यापक, बलदेव विद्यापीठ इण्टर कालेज, सेवरा, अयोध्या

तथा मधुबिन्दु सांसारिक विषय भोग का प्रतीक है। इस प्रकार कथा के माध्यम से वह मानव जन्म की दुर्लभता को प्रतिष्ठित करने का कार्य करते हैं।

जैन परम्परा में आगम साहित्य पर अनेक महत्वपूर्ण व्याख्याएँ प्राप्त होती है। इन व्याख्याओं में निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि तथा टीका महत्वपूर्ण है। यह समस्त साहित्य भण्डार जैन कथा साहित्य की दृष्टि से अत्यंन्त मूल्यवान माने जाते हैं। "आगम ग्रन्थों को इन व्याख्या ग्रन्थों से मिलाकर देखने पर पच्चाड़गी साहित्य बनता है। निर्युक्ति अपने छन्द विधान के कारण महत्वपूर्ण होता है। यह आगम ग्रन्थों पर आर्या छन्द में प्राकृत भाषा में लिखी गयी है। निर्युक्ति की एक विशेषता यह है कि यह अत्यन्त संक्षिप्त प्रकृति में लिखी गयी है, इस कारण बिना भाष्य एवं टीका के इनकों नही समझा जा सकता है। निर्युक्ति में कथाओं के केवल नामों का उल्लेख किया गया है, सम्पूर्ण कथाएँ इसमें प्राप्त नहीं होती हैं। इन ग्रन्थों में आख्यान, दृष्टांत, उदाहरण, प्रश्नोत्तर एवं समस्यापूर्ति द्वारा विषय को विवेचित करने का कार्य किया गया है। इस कारण से यह अत्यंन्त जटिल रचनाएँ मानी जाती है।

भद्रबाहु सूरि ने आचारांगसूत्र पर जो निर्युक्ति लिखी है, उसमें 356 गाथाएं प्राप्त होती हैं। इन्द्रभूतिगणधर ने सूत्रकृतांगनिर्युक्ति लिखी है, जिसमें 205 कथाएँ प्राप्त होती हैं। भद्रबाहु ने वृहतकल्प तथा व्यवहारसूत्र पर निर्युक्ति लिखने का कार्य किया है। इसके अतिरिक्त भद्रबाहु ने सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति की रचना की जो कि वर्तमान समय में अप्राप्त है। भद्रबाहु ने निशीथनिर्युक्ति नामक एक रचना की है, जो कि आचारांगसूत्र का एक अध्ययन है, जिसके कारण इस रचना को आचारांगनिर्युक्ति में सम्मलित किया गया है। इनके द्वारा ही उत्तराध्ययनसूत्र पर उत्तराध्ययननिर्युक्ति की रचना की गयी है, जिसमें 559 गाथाएँ है। दशवैकालिक पर इन्होनें निर्युक्ति लिखने का कार्य किया है, जिसमें 371 गाथाएँ प्राप्त होती है।[4]

भाष्य ग्रन्थों की रचना भी निर्युक्तियों के समान ही किया गया है। इनकी प्रकृति शैली भी संक्षिप्त एवं गूढ़ है। यह रचनाएँ मूल रुप से अर्धमागधी में प्राप्त होती है, परन्तु कुछ स्थानों पर मागधी तथा शौरसेनी भाषा का भी प्रयोग किया गया है। भाष्यों की कथावस्तु मूल रुप से प्राचीन अनुश्रुतियाँ, लौकिक कथाएँ, प्राचीन आचार व्यवहार इत्यादि है। निशीथ भाष्य, व्यवहार भाष्य, बृहत्कल्प भाष्य, उत्तराध्ययन भाष्य, आवश्यक भाष्य, तथा दशवैकालिक भाष्य प्रमुख भाष्य है, जिनकी रचना जैन आचार्यो के द्वारा की गयी।

जैन साहित्य में चूर्णियों को भी प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता है। "कथा साहित्य के रुप में इनका अत्यंन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चूर्णियों की सबसे प्रमुख विशेषता यह रही है कि इनकी भाषा शैली मिश्रित है। इनमें संस्कृत एवं प्राकृत दोनों का मिश्रित गद्य स्वरुप प्राप्त होता है। जैन धर्म के सिद्धान्तों को प्रसारित करने एवं जनता को समझानें में यह विधा अत्यन्त उपयोगी रही। चूर्णियों में ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक, धार्मिक, लौकिक अनेक प्रकार की कथाएँ प्राप्त होती है।

प्राकृत भाषा में प्राप्त होनें वाले कथा साहित्य को कथा, उपकथा, अन्तकथा, आख्यान, आख्यायिका, उदाहरण, दृष्टांत, वृतान्त एवं चरित इत्यादि भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है। जैन ग्रन्थ दशवैकालिक में कथा के तीन भेदों का उल्लेख किया गया है। अकथा, कथा, तथा विकथा।[5] जब अज्ञानी पुरुष मिथ्यादृष्टि के द्वारा किसी कथा का निरुपण करता है तो वह संसार परिभ्रमण के कारण अकथा कहलाती है। प्रमाद, कषाय, राग, द्वेष, स्त्री एवं चोर इत्यादि से युक्त समाज को विकृत करने वाली कथाए विकथा के रुप में जानी जाती है। जब कोई कथा लोक कल्याण के लिए तप, संयम, दान तथा शील से युक्त व्यक्ति के द्वारा विचारशोधन के रुप में निरुपित की जाती है, तो उसे सत्कथा या कथा कहा जाता है। जैन मानीषियों के अनुसार केवल सत्कथा ही उपादेय है, शेष सभी त्याज्य होती है।

यदि विषय की दृष्टि से कथाओं का विभाजन किया जाए तो वह मूल रुप से चार प्रकार की होती है। अर्थकथा, धर्मकथा, कामकथा एवं मिश्रकथा।

अर्थकथाओं से तार्त्पय ऐसी कथाओं से है, जो कि अर्थोपार्जन की ओर अभिमुख करने वाली होती है। यह लौकिक जीवन से सम्बन्धित होती है। लौकिक जीवन में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। जिसके बिना एक भी संसारिक कार्य करना संभव नही हो पाता है। मानव की आर्थिक समस्याओं एवं उनके समाधान के लिए कथाओं, आख्यानों, दृष्टांतों तथा व्यंग्यों के द्वारा जो कथाएँ कही जाती है, उनकों अर्थकथाएँ कही जाती है।[6] हरिभद्र सूरि ने अपनी रचनाओं में अर्थकथा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। प्राकृत जैन साहित्य में अपना माल लेकर दूर देश की यात्रा करने वाले वणिक, सार्थवाहों एवं पोतवणिकों की अनेक कथाएँ हमको प्राप्त होती है। यह वणिक वर्ग समुद्र मार्ग से यात्रा करता है, अपनी जान जोखिम में डालकर प्रचुर मात्रा में धन का संचय करता है। इस धन के माध्यम से अपने लौकिक जीवन को आगे बढ़ाने का कार्य

करता है। समराइच्चकहा, नर्मदासुंदरीकथा, जिनदत्ताख्यान तथा सिरिवालकहा आदि ऐसे ही ग्रन्थ है। जिनमें व्यपार के द्वारा धन एकत्र करने की कथाएँ कही गयी है। जैन ग्रन्थ कुवलयमाला में थाणु एवं मायादित्य नामक दो मित्रों की कथा का उल्लेख है, जो व्यापार करने के लिए देशाटन करते है। वसुदेवहिण्डी में व्यापार करने के लिए साहसिक यात्रांए करने वाले चारुदत्त की कथाएँ प्राप्त होती है। सोमप्रभसूरि द्वारा लिखित कुमारपालप्रतिबोध मे श्रेष्ठीपुत्र सुन्दर की कथा की व्याख्या की गयी है।"

ऐसी कथाएँ जो काम प्रवृति की ओर प्रेरित करने का कार्य करती है, वह कामकथाएँ कहलाती है। सौन्दर्य, युवावस्था, वेश, दाक्षिण्यादि विषयों तथा कला की शिक्षा देनें वाली कथाएँ कामकथाओं के अन्तर्गत आती है।[7] हरिभद्र सूरि ने कामकथाओं का प्रतिपादन प्रमुख रुप से किया है। उनक मानना है कि काम के अभाव मे धर्म एवं अर्थ को प्राप्त करना संभव नही है। "समराइच्चकहा नामक ग्रन्थ में समरादित्य, अशोक, कामांकुर तथा ललितांग नामक मित्र एक साथ बैठकर कामशास्त्र की चर्चा करते हैं। वे लोग काम को त्रिवर्ग को प्राप्त करने का साधन मानते हैं। यह इस बात को सिद्ध करता है कि जैनकथाओं में केवल वैराग्य रस की ही प्रधानता नही है, वरन इसमें हमको श्रृंगार रस भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। जैन साहित्य में ऐसे अनेक प्रेमाख्यानों की रचना जैन विद्धानों के द्वारा की गयी है। इसके माध्यम से उन्होनें अपने उपदेशों का प्रचार – प्रसार करने का कार्य किया। इन रचनाओं ने उत्तकालीन साहित्य में रोचक कथा कहानियों का रुप धारण किया।"

धर्मकथाओं के अन्तर्गत उन कथा कहानियों को सम्मलित किया जाता है, जिनका उद्देश्य क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि सद्धर्म की ओर ले जाने का कार्य करती है। धर्मकथाओं मे पहले कथा कही जाती है, उसके पश्चात उसके माध्यम से धार्मिक एवं नैतिक ज्ञान का उपदेश दिया जाता है।[8] "हरिभद्र सूरि ने जैन श्रमण के दश धर्मो से सम्बन्धित कथाओं को धर्मकथा के रुप में विहित किया है। इसी प्रकार महाकवि पुष्पदन्त ने अभ्युदय तथा निःश्रेयस की सिद्धि करने वाली निबद्ध कथाओं को धर्मकथा के रुप में माना है। इन धर्मकथाओं की विशेषता यह है कि इन कथाओं को रोचक बनाने के लिए जैन आचार्यो ने श्रृंगार रस को जोड़ने का कार्य किया है। कुवलयमाला में हमको मनोनुकूल धर्मकथाएँ प्राप्त होती है। कुवलयमाला में कथाओं के माध्यम से संसार के स्वरुप, गतियाँ, जाति स्मरण, पाप का पश्चाताप, धन तृष्णा, मोक्ष का शाश्वत सुख, वींतराग की भक्ति इतिहास का विस्तार से वर्णन किया गया है। धर्मकथाओं को मुख्य रुप से आक्षेपणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी तथा निर्वेदिनी भागों में विभाजित करके देखा जाता है।

मिश्रकथाओं के अन्तर्गत धर्म, अर्थ एवं काम का प्रतिपादन करने वाली कथाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसमें कथाओं के माध्यम से काव्य, कथा एवं ग्रन्थों के अर्थ का विस्तार करने के लिए लौकिक एवं धार्मिक रुप से प्रसिद्ध हेतु एवं कारणों को जोड़ा जाता है। "इनकों मिश्रकथा के साथ साथ सर्कीण कथा के नाम से भी जाना जाता है। इन कथाओं के कथानक मनोरजंक एवं कौतुकवर्धक होते है।[9] जैन कथाकारों ने प्रशंसनीय रुप से इन कथा प्रकारों का प्रयोग किया है। इन संर्कीण कथाओं में अनेक तत्वों का मिश्रित स्वरुप होता है, जिसके कारण ये कथाएँ जनमानस को अधिक प्रभावित करने की क्षमता रखती है। इस प्रकार की रचनाएँ गद्य पद्य मिश्रित तथा भाषा की दृष्टि से प्राकृत संस्कृत मिश्रित दिखाई देती है। इस प्रकार की कथाओं का प्रधान विषय राजाओं एवं वीरों के शौर्य, प्रेम, ज्ञान, दान, वैराग्य, साहसी समुद्री यात्राओं के साहस, अगम्य स्थानो के अस्तित्व एवं स्वर्ग नरक रहे है।

पात्रों के आधार पर दिव्य, मानुष तथा मिश्र कथाओं को लिखा गया है। दिव्यकथाओं में देवताओं के सम्बन्ध में, मानुष कथाओं के अन्तर्गत मनुष्यों के बारे में तथा मिश्रकथाओं में देवताओं एवं मनुष्यों दोनों को ही पात्र के रुप में चित्रित किया गया है।

"भाषा की दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत एवं मिश्र तीनों रुप हमारे सामने उपस्थित होते हैं तथा इन तीनों का ही प्रयोग साहित्य में बड़ी संख्या में किया गया है। इसी प्रकार शैली की दृष्टि से बात की जाए तो सकलकथा, खण्डकथा, उल्लासकथा, परिहासकथा तथा संर्कीणकथा जैसी पंचविध कथाओं का प्रयोग किया जाता है।[10] प्राकृत जैन साहित्य को विभिन्न वर्गों में विभक्त किया जाता है। जैन चरित काव्यों को कुछ विद्धान कथा साहित्य के अन्तर्गत ही रखने का कार्य करते है। इनका मानना है कि प्राकृत के चरित रचनाओं में जितने तत्व काव्य के प्राप्त होते हैं, उससे अधिक तत्व कथा के प्राप्त होते है ,इस कारण से प्रबन्धात्मक चरितों के अन्तर्भाव को भी कथा साहित्य के अन्तर्गत सम्मलित किया जा सकता है।"

उपदेशात्मक कथा साहित्य के पश्चात विविध कथा कोश को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। इसमें कथा संग्रह तथा प्रबन्ध साहित्य को स्थान दिया जाता है। जैन संस्कृत प्राकृत कथा साहित्य में अनेक कथा संग्रह प्राप्त होता है। जैन ग्रन्थ जिनरत्नकोश में इनकी कुल संख्या बीस के लगभग बताई गयी है।

इस अध्ययन में हम पाते है कि जैन धर्म के गूढ विचारों को सरल भाषा में प्रस्तुत करने के लिए कथा साहित्य का प्रणयन मिलता है। इसमें न केवल धार्मिक विचारों को वरन् लोक में प्रचलित विभिन्न कथाओं को आधार बनाया गया है। जैन धर्म की विचारधारा को प्रस्तुत करने वाले यह कथा साहित्य न केवल भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर मानी जाती है, वरन् जैन धर्म के लोक प्रसार में भी इनकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विष्णु, दीप्ति, बौद्ध एवं जैन कथा साहित्य परिशीलन, राका प्रकाशन इलाहाबाद, 2011, पृ0 स0 149
2. जैन, जगदीश चन्द्र, जैन कथा साहित्य विविध रुपों में, प्राकृत भारती, जयपुर, पृ0 स0 20
3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1966 पृ0 स0 447
4. जैन साहित्य का बृहद इतिहास, 6, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, पृ0 स0 257
5. जैन, जगदीशचन्द्र, जैन कथासाहित्य विविध रुपों में, प्राकृत भारती, जयपुर, पृ0 स0 22
6. देव, रंजनसूरि प्राकृत – संस्कृत का समानान्तर अध्ययन, भाषा साहित्य संस्थान इलाहाबाद, 1984 पृ0 स0 81
7. शास्त्री, कैलाशचन्द्र जैन सिद्धान्त, भारतीय ज्ञानपीठ नईदिल्ली, 2009, पृ0 स0, 141
8. शास्त्री, नेमिचन्द्र प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1966 पृ0 स0 460
9. जैन साहित्य का बृहद इतिहास, 6, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, पृ0 स0 260
10. विष्णु, दीप्ति, बौद्ध एवं जैन कथा साहित्य परिशीलन, राका प्रकाशन इलाहाबाद, 2011, पृ0 स0 149

प्राचीन भारत में स्तम्भ वास्तु का विकास

डा. नीलेश कुमार पाण्डेय*

नवपाषाण काल तक आते–आते मानव स्थायी निवास की ओर अग्रसर हुआ। खाद्योत्पादन एवं आर्थिक प्रक्रिया के विकास में मानव को घर बनाकर एक स्थल पर ही टिकने को मजबूर कर दिया। मानव के आरम्भिक घर खम्भों पर टिके हुए थे यहीं से मानव जीवन में स्तम्भ का महत्त्व बढ़ता गया। पाषाणकाल से लेकर वर्तमान काल तक मानव अधिवासों के आधार, स्तम्भ ही रहे हैं। वैदिक ऋषियों ने स्तम्भ को अपने मंत्रों में अद्‌भुत स्थान दिया है।

ऋग्वेद में स्तम्भ को स्कम्भ कहा गया है।[1] केतु, ध्वज, यूप, वनस्पति स्तम्भ और स्थूण शब्द भी वैदिक साहित्य में स्वतंत्र एवं वास्तुगत स्तम्भों के लिए आये है। सभी प्रकार के स्तम्भों के उदभव एवं विकास का मूल आधार वैदिक स्कम्भ का सिद्धांत था। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुएं किसी न किसी सहारे पर टिकी हुई हैं। गृह का छादन जिस प्रकार स्तम्भ पर टिका होता है उसी प्रकार यह द्युलोक ब्रह्म के वृहत शरीर पर टिका हुआ है। ब्रह्माण्ड के अनन्त लम्बाई के अक्ष को ही अर्थवेद के स्कम्भ सूक्त [2] में स्कम्भ या धारण करने वाला बृह्मा कहा जाता है। स्कम्भ सूक्त के अनुसार सबके आधार स्तम्भ ईश्वर ने द्युलोक और पृथ्वी इन दोनों को धारण किया है उसने बड़े अंतरिक्ष को धारण किया है।[3] उसने विस्तृत छः दिशाओं को धारण किया है। इन सब भवनों में वह व्यापक है। जैसे वृक्ष की शाखाएं स्कंद के चारों और ठहरती हैं उसी प्रकार जगत के बीच में विद्यमान स्कम्भ, ब्रह्म के सहारे सभी लोग ठहरे हुए है।[4] यह सम्पूर्ण लोक ही स्तम्भवत् है। भूमि स्कम्भ बृह्म के पादमूल के समान, अंतरिक्ष के उदर के समान और सूर्य मस्तक के समान है।[5] स्कम्भ को ही ज्येष्ठ ब्रह्म कहा गया है। जिसने सब लोको को पूरा–पूरा व्यापा है।[6] प्रत्येक लोक स्कम्भ के अंग मात्र है।[7] इन्हीं सिद्धांतों से प्रेरणा करता है, सूर्य को स्कम्भ धारण करता है, वृक्ष को स्कम्भ धारण करता है, पशु–पक्षियों को स्कम्भ करता है, काल को स्कम्भ धारण करता है, इसलिए इन सबका सम्बन्ध वैदिक धर्म–दर्शन में स्तम्भ पूजा से स्थापित करते हुए विभिन्न प्रकार के स्तम्भ निर्माण के सिद्धान्त को विकसित किया गया।[9] जिनका मूर्त अंकन प्राचीन भारतीय कला में भी मिलता है।[10]

वैदिक स्तम्भवास्तु का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष वैदिक यूप है। अठपहलू यूप वैदिक यज्ञों में यज्ञ–वैदिका पर स्थापित किया जाता था। यूप को ही आदित्य भी कहा जाता है।[11] यूप आदित्य का प्रतीक है जो यौ और पृथ्वी को धारण करता है। सूर्य ही घूमने वाला धर्म चक्र है और वही स्तम्भ जो द्युलोक और पृथ्वी का सहारा है।[12] यूप विभिन्न लोकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैसा कि शतपथ ब्राह्माण में कहा गया है, यूप का भूमिनिखात अंश असुरों के अधिकार में समझा जाता था।

रशनायुक्त भाग मनुष्यों का चाषाल पर्यत देवों का और ऊपर का भाग देवसदन समझा जाता था।[13] यूप का शीर्ष स्वर्ग या सूर्यलोक का प्रतिनिधित्व करता है। वाजपेय यज्ञ में सूर्य के प्रतीक के रूप में गेहूँ के आटे से बने हुए चक्र को यूप के सिरे पर रखा जाता था। यज्ञ करने वाला सीढ़ी की सहायता से यूप पर चढ़कर चक्र को पकड़ते हुए मंत्रोचारण करता था – है देवी हम सूर्य पर पहुँच गये है। अशोक के सांची एवं सारनाथ के सिंह – चक्र शीर्ष स्तम्भों पर वाजपेय यज्ञ के स्वर्गारोहण वाले रूप का ही अंकन अभिलक्षित होते है।[14] यज्ञीय यूप प्राणमय स्कम्भ का रूप था, जिसकी मेखला में समस्त जगत बंधन युक्त है।[15]

यज्ञ यूप से बंधे पशु इसी बंधन मुक्त जगत के प्रतीक थे।

चक्र ध्वज या चक्र स्तम्भ का निर्माण भी वैदिक स्कम्म सिद्धान्त के आधार पर किया गया। कारण रूपी ब्रह्म और कार्य रूपी जगत दोनों स्कम्भ के ही अंग है। स्कम्म के घूमने पर संसार का कारण रूप कार्यरूप जगत में बदल जाता है।[16] स्कम्भ के इस रूप का प्रयोग सूर्यदेव संवितृ के सम्मान में सामदेव के मंत्रज्ञान के समय किया जाता था यूप के किनारे जमीन में एक गोल सा रथ का पहिया स्थापित किया जाता था।[17] याज्ञवलक्य स्मृति के रथ के पहिये के लिए चक्र[18] शब्द प्रयुक्त हुआ है चक्र गति, सूर्य और काल तीनों का प्रतीक था। ऋग्वेद में काल चक्र का वर्णन आता है।[19] वज्र और यूप एक ही है[20] और इनको वज्र और

* पूर्व रिसर्च एसोसिएट, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी

चक्र कहा गया है।[21] यूप वज्र का ही गतिमान रूप चक्र है। चक्रस्तम्भ–अक्ष पर टिके काल और नियम के सापेक्ष गतिशील लोकों का प्रतीक है। चक्र पूजा भी प्राचीन धर्म का अंग था, जिसका सम्बन्ध पहले विष्णु से था और वही बुद्ध का धर्मचक्र हो गया।[22] बौद्धकला में अनेक धर्मचक्र स्तम्भ एवं इसकी पूजा करते हुए जनसमूह के अंकन मिलते हैं।

विभिन्न देव स्कम्भ के अंग है अतः इन देवों में स्कम्भ ब्रह्म के समान ही स्कम्भित करने की शक्ति है। ऋग्वेद में मनुष्य को धारण करने वाले स्थूण को अग्नि रूप में बताया गया है।[23] वैदिक अवधारणा में अग्नि ब्रह्माण्ड के अक्ष का भी प्रतिनिधित्व करता है। जो एक स्तम्भ के रूप में पृथ्वी और स्वर्ग के बीच फैला है।[24] ब्रह्माण्ड का अक्ष देवदास्वन पौराणिक कथा के अनुसार प्रज्वलित शिव लिंग से भी मेल खाता है जो जमीन के आधार पर स्थित है और ऊपर की ओर उठते हुए स्वर्ग तक खड़ा है।[25] उसे ही विश्व का अग्नि स्कंध रूप भी कहते हैं।[26] बौद्धकला में बुद्ध को अग्नि स्कंध के रूप में अंकित किया जाता था। इंद्र ने ऊंचे खम्भों पर द्युलोक को स्तम्भित कर रखा है। इसी विचार को वैदिक कला में इंदध्वज या इंद्रयष्ठि के रूप में स्थान दिया गया। अस्तित्व के सम्बन्ध में भी कहा गया है कि आदित्य द्युलोक को स्कम्भित करते हैं। [27]

आदित्य के स्कम्भित करने के गुण को चक्र स्तम्भ के रूप अंकित किया गया। विभिन्न देवों को यूप भी कहा गया कि यूप भी एक स्तम्भ है। विष्णु को यूप कहा गया है।[28] आदित्य को यूप कहा गया है।[29] यूप को स्थाणु भी कहा गया है, जो भव का एक नाम है। इसी सिद्धान्त के पीछे रूद्रध्वज एवं लिंग स्तम्भ का निर्माण प्रारम्भ हुआ। स्तम्भ पूजा के नाना रूप लोक में प्रचलित थे, जिनका नामकरण उनके शीर्ष भाग पर अंकित आकृतियों से किया जाता था, जैसे चक्र–स्तम्भ, सिंह–स्तम्भ, गरुड–स्तम्भ, ताल–स्तम्भ।[30] स्तम्भमह के रूप में स्तम्भ को देवता मानकर उसकी पूजा की जाती थी [31] और इसके शीर्ष पर अंकित आकृतियों का सम्बन्ध विभिन्न देवों से निश्चित होता था।

आरम्भिक चरणों में स्तम्भों का निर्माण वृक्ष के तने को काट–छाट कर सादे रूप में ही किया जाता था। यूप अठपहलू बनाये जाते थे।[32] इन्द्र–ध्वज भी सादा होता था। कालांतर में जब विभिन्न सम्प्रदाय के लोग अस्तित्व में आये तो सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध देवी प्रतीक चिन्हों से मुक्त स्तम्भ स्थापित किये जाने लगे। विष्णु के सम्मान में ताल–ध्वज सूर्य के सम्मान में चक्रध्वज स्थापित किये जाने लगे। बौद्ध एवं जैन धर्मों में भी चैत्य–स्तम्भ, अग्नि–स्तम्भ, धर्मचक्र–स्तम्भ दर्शन ही भारतीय स्तम्भ कला के विकास का मूल आधार स्तम्भ रहा। स्वतंत्र ध्वज स्तम्भों के अलावा अन्य स्तम्भों के निर्माण एवं कला पर वैदिक स्कम्भ दर्शन का अविर्भाव रहा। श्मशान पर यम के बैठने के लिए श्मशान स्थूणा [33] लगाई जाती थी। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि समाधि पर प्रतीक स्तम्भ गाड़ दिया जाता था।[34] लौरिया–नंदनगढ़ से ऐसे ही श्मशान स्थूण प्राप्त हुए हैं। विवाह में विवाह–यष्ठि स्थापित कर पूजा जाता था। मुख्य स्तम्भ को सूत साहित्य में मध्यम स्थूण कहा गया है। मुख्य स्तम्भ पर ही घर निर्भर करता था। वास्तोष्पति भवन का स्वामी है और पृथ्वी गृहस्वामिनी। वास्तुस्वामी वास्तोष्पति एवं वास्त्वाधार धरा को धारण करने के प्रतीक रूप में मध्यम स्थूण स्थापित कर उसकी पूजा की जाती थी। वास्तु ब्रह्म है और इसको धारण करने वाला स्तम्भ ब्रह्म है। इसलिए वास्तु में प्रयुक्त स्तम्भों का सम्बन्ध स्कम्भित करने वाले देवों में स्थापित करते हुए चौपहल स्तम्भ को ब्रह्मकाण्ड, अठपहल स्तम्भ को विष्णुकाण्ड, षोडपहल स्तम्भ को चंद्रकाण्ड वृताकार स्तम्भ को रूद्रकाण्ड नाम दिया गया।

स्तम्भों के विकास का अगला चरण मौर्य काल में देखने को मिलता है। अशोक कालीन कला प्रमुख रूप से उसके स्तम्भों में देखने को मिलती है तभी तो वासुदेव शरण अग्रवाल का यह कथन यथोचित प्रतीत होता है ''इनके निर्माण में शिल्प का कौशल तो है ही इनकी कल्पना भी अत्यंत मौलिक, सम्भवतः स्वयं सम्राट की देन है। सम्राट के मन में एक तो धर्म सम्बन्धी महान आदर्श था दूसरा उसे स्तम्भ शीर्षकों में व्यक्त करने की योजना थी ।[35]''

अशोक ने जितने स्तम्भ बनवाये थे वे सब सुरक्षित नहीं रहे। पाटलिपुत्र एवं बस्ती जिले में भी उसके खम्भे थे जिनके कुछ टुकड़े ही मिले हैं। मौर्यकालीन स्तम्भ वैदिक कालीन स्तम्भों की विकास की कड़ी प्रतीत होते हैं। वैदिककालीन स्तम्भ काष्टनिर्मित एवं सादे होते थे जबकि मौर्यकालीन स्तम्भ पाषाणनिर्मित व्यापक अलंकरणों से युक्त एवं एकाश्म शिलाखंड से बने होते हैं। फाहियान ने अशोक के छः स्तम्भों का वर्णन किया है एवं हवेनसांग ने 15 स्तम्भों का उल्लेख किया है। वैदिककालीन काष्ठ निर्मित स्तम्भ समय के साथ सड़ गल कर नष्ट हो गए होंगे परन्तु मौर्यकालीन स्तम्भ पाषाण निर्मित होने के कारण आज भी प्राप्त है।

अब तक अशोक के निम्नलिखित स्तम्भ प्राप्त हुए हैं–

1. सारनाथ स्तम्भ, जिस पर चार सिंह शीर्षक है। 2. सांची स्तम्भ 3. सिंह शीर्षक युक्त रामपुरवा स्तम्भ 4. रामपुरवा का वृषभ शीर्षक युक्त स्तम्भ 5. लौरिया नंदनगढ़ स्तम्भ 6. लौरिया–अरराज स्तम्भ 7. इलाहाबाद स्तम्भ 8. कौशाम्बी स्तम्भ 9. रूम्मिनिदेइ या लुम्बनी स्तम्भ 10. निग्लीवा स्तम्भ 11. बखिरा या कोल्हुआ स्तम्भ 12, संकाश्य स्तम्भ 13. दिल्ली के दो स्तम्भ टोपरा और मेरठ। इन चौदह स्तम्भों में से 10 पर लेख है।

मौर्यकाल के स्तम्भों की रचना में एक ऊँची मध्य यष्ठि या डंडी के ऊपर शीर्षक लगाया जाता है। लट (यष्ठि, लट्ठी, लाट) की ऊंचाई 40 से 50 फुट के लगभग है। उनके नीचे की पेंदी पत्थर की चौकी में छेद काटकर फंसाई गई है। लाट के ऊपर पशु की आकृति का शीर्षक है। मौर्य शिल्पियों की उत्कृष्ट कला का फल इन स्तम्भों में मिलता है। इनकी उदार प्राशुता, सुखप्रद. अनुपात, सच्ची उकेरी मणि जैसी चमक और सर्वोपरि चिर अभ्यास से परिणत शीर्षकों की कला इन विशेषताओं के कारण ये मौर्य स्तम्भ कला संसार में अद्वितीय है।[36]

कला का विकास क्रमबद्ध रूप में होता है । प्रत्येक युग में पूर्ववर्ती कला को अपना लेते हैं दूसरा उसमें अपने बुद्धि और विवेक से परिवर्तन कर लेते हैं। तीसरी विशेषता उस कला को मौलिक रूप से जन्म देते है। यह विशेषता मौर्यकाल में भी दिखाई पड़ती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि मौर्य स्तम्भ कला मौलिक एवं पर्सीपोलिस से आयातित है, क्योंकि मौर्य शासकों का सम्बन्ध दूर–दूर तक भारतीय तक्षा यज्ञीय यूपों के रूप में काष्ठ–स्तम्भ की रचना करते रहे। अशोक के शिल्पियों ने केवल काष्ठ के स्थान पर पत्थर का परिवर्तन किया।[37]

इस काल में स्तम्भों के लिए कई शब्दों का प्रयोग हुआ। चैत्य प्रसादों के सम्मुख स्तम्भों को प्रसाद स्तम्भ कहा जाता था। कीर्ति–स्तम्भ शब्द पहाड़ी गुफाओं के सामने उत्कीर्ण किये जाते थे। 'कीर्ति' का अर्थ पर्वतीय गुफा था। सारनाथ व सांची में बौद्ध स्तूपों के सम्मुख भाग में खड़े किये गये हैं। लंका में लकड़ी के विशाल खम्भे के हनुमान ने राक्षसों पर प्रहार करने के लिए था। (ऋग्वेद में इन खम्भों की ऊँचाई (वर्णन) का विवरण है इन्हें यज्ञ ध्वज (अध्वरस्य केतु) का रूप बताया गया है। (ऋग्वेद 3/8/ 3/88)। ऐसे स्तम्भों को प्रजा के सुख सौभाग्य के लिए खड़ा किया जाता था।

सारनाथ स्तम्भ के पूर्णघट को पाश्चात्य विद्वान 'घंटाकृति' कहते हैं। उनका विचार है कि वह और घंटा है। इसके विपरित कई कारण है।

1. ऊपर की मौज पत्तियों के लिए घंटे की आकृति में कोई स्थान नहीं है।
2. परम्परा प्राप्त पद्याकृति के अतिरिक्त उनकी बछेड़िया (सीप्लस) भी बनाया जाता था।

घंटा मानने पर उसके ऊपर बंधी हुई रश्मिमयी मेखला की कोई समानता नहीं है यह केवल पूर्णघट के कंठबंधन के लिए ही उचित है। विभिन्न अलंकरणों की व्याख्या केवल पूर्णघट कहा गया मंगल–कलश के रूप में इसे स्वीकार किया गया है। कुछ विद्वानों का विचार है कि पूर्णघट की कला बाहर से आयातित नहीं है बल्कि यह भारतीय परम्परा के भीतर से उत्पन्न हुआ और जनता ने समझ बूझ कर इसे अपनाया है। पहले से चली आ रही परम्परा के साथ पूरा मेल बैठता है।

मौर्यों के काल की स्तम्भ कला वेद के कालों में भी किंचित रूप में प्रयोग आती रही, स्तूपों के तोरणद्वार, मंदिरों के प्रवेशद्वार, मंड चौत्यों में इन स्तम्भों के व्यापक प्रयोग एवं विकास के प्रमाण प्राप्त होते हैं। यहाँ पाये गये स्तम्भों पर जो भी अंकन प्राप्त होते हैं। उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिककाल से चली आ रही स्तम्भ परम्परा सतत प्रवाहमान होते हुए आज की कला परम्पराओं में अंशतः जीवित है।

संदर्भ सूची

1, बन्धुः, विश्व (सं.), (1963) ऋग्वेद, होशियारपुर, पृ. 1493.
2. बन्धुः, विश्व (सं.), (1993) अथर्ववेद, होशियारपुर पृ. 1257.
3. पूर्वाद्धत, पृ. 1264
4. पूर्वाद्धत.
5. पूर्वोद्धत, पृ. 1263.
6. पूर्वोद्धत. पृ. 1262.
7. पूर्वोद्धत.

8. बन्धुः, विश्व (सं.) (1967) अथर्ववेद, होशियारपुर, पृ. 1259 असच्च यह सच्चान्त स्कम्भ तं ब्रहिश.
9 पूर्वाद्वत, पृ. 1266.
10. उपाध्याय, गंगा प्रसाद (सं एवं अनु) (1969) शतपथ आत्मण, नई दिल्ली पृ. 1042.
11. शास्त्री, आर. शर्मा (सं.) (1921) तैत्तिरीय ब्राह्मण, पृ. 28
12. अग्रवाल, वा.श. (सं.) (1966) भारतीय कला, वाराणसी, पृ. 15.
13. उपाध्याय, गंगा प्रसाद (सं. एवं अनु.) (1967) शतपथ ब्राह्मण, नई दिल्ली पृ. 480.
14. अग्रवाल, वा.श. (सं), पूर्वोद्वत, पृ. 62.
15. बन्धुः, विश्व (सं.) (1961) अथर्ववेद, होशियारपुर, पृ. 1262.
यत्र स्कम्भं प्रजनयन पुराण व्यवर्तयत।
एक तदङ्ग स्कम्भस्य पुराण नु साविदुः।।
16. उपाध्याय, गंगा प्रसाद (सं. एवं अनु) (1969) शतपथ ब्राह्मण, पृ. 723, नई दिल्ली.
17. राय, गंगा प्रसाद (सं. एवं अनु) याज्ञवलक्य स्मृति, पृ. 19.
18. पूर्वाद्वत, पृ. 15.
19, उपाध्याय, गंझा प्रसाद (सं. एवं अनु) (1967) शतपथ ब्राह्मण, पू. 473.
20. आपटे, हरिनारायण (सं.) (1 898) तैत्रीय ब्राह्मण पृ. 18.
21. अग्रवाल, चा.श. (सं.), पूर्वोद्वत, पृ. 151.
22. वैश्वानरनाभिरस क्षितीनां स्थूणेव जनां उपमिद्रयन्य बन्धुः, विश्व (सं.) (1965) ऋग्वेद, होशियारपुर पृ. 447.
23. स्थूणेव सुमिता दृहतः द्यौः, बन्धुः विश्व (सं.) (1964) ऋग्वेद, होशियारपुर, पृ. 1792.
24. कुमारस्वामी, ए.के. (सं.) एलिमेंटस ऑफ बुद्धिष्ठ आइक्नोग्राफी, पृ. 66.
25. अग्रवाल, वा.श. (सं) पूर्ववत, पृ. 60
26. बन्धुः, विश्व (सं.) (1964) होशियारपुर पृ. 2742.
27. उपाध्याय, गङ्गा प्रसाद (स. एवं अनु) पूर्वाद्वत
28. आपटे, गणेश विनायक (सं.) (1934) तैत्तिरीय ब्राह्मण, पृ. 68.
29. अग्रवाल, वा.श. (सं.) पूर्ववत, पू. 152.
30. वही, पृ. 152.
31. उपाध्याय, गंगा प्रसाद (सं. एवं अनु) (1967) पृ. 566.
32. बन्धुः, विश्व (सं.) (1964) ऋग्वेद, होशियारपुर, पृ. 3287.
33. बन्धुः, विश्व (सं.) (1964) अथर्ववेद, होशियारपुर पृ. 1262.
34. अग्रवाल, वा श. (सं.) (1966) भारतीय कला, वाराणसी पृ. 107.
35. वही, पृ. 109.
36. वही, पृ. 113.

भारत की सांस्कृतिक विरासत : प्रारंभ से मध्यकाल तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. सुमन कुमारी*

सार :

प्रस्तुत शोध लेख ''भारत की सांस्कृतिक विरासत : प्रारंभ से मध्यकाल तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण'' का अध्ययन है। भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं निरंतर विकसित होने वाली सभ्यताओं में अग्रणी स्थान रखती है। इसकी सांस्कृतिक परंपरा दीर्घकालीन ऐतिहासिक विकास, विविध सांस्कृतिक अंतःक्रियाओं तथा सामाजिक–धार्मिक समन्वय की प्रक्रिया का परिणाम है। सिंधु–सरस्वती सभ्यता से प्रारंभ होकर वैदिक, उत्तरवैदिक, महाजनपद, मौर्य, गुप्त तथा मध्यकालीन युग तक भारतीय संस्कृति ने समाज के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, कलात्मक और बौद्धिक आयामों को निरंतर परिष्कृत एवं समृद्ध किया। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की विशिष्टता उसकी अखंडता, अनुकूलनशीलता, बहुलतावादी दृष्टिकोण तथा विविधताओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता में निहित है। वैदिक ज्ञान–परंपरा, बौद्ध एवं जैन दर्शन, मौर्य और गुप्तकालीन कला एवं स्थापत्य, मंदिर वास्तुकला, मूर्तिशिल्प, साहित्य, संगीत तथा प्राचीन शिक्षा–केंद्रों ने भारतीय संस्कृति को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट पहचान प्रदान की। मध्यकालीन युग में भक्ति एवं सूफी परंपराओं ने सांस्कृतिक समन्वय, धार्मिक उदारता तथा सामाजिक सद्भाव को प्रोत्साहित करते हुए भारतीय संस्कृति के बहुलतावादी स्वरूप को और अधिक सुदृढ़ किया।

प्रस्तुत शोध–पत्र में प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से मध्यकाल तक भारतीय सांस्कृतिक विरासत के क्रमिक विकास का अध्ययन ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है। अध्ययन के लिए पुरातात्त्विक अवशेषों, अभिलेखीय प्रमाणों, प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य, विदेशी यात्रियों के यात्रा–वृत्तांतों तथा समकालीन इतिहासकारों के शोधग्रंथों का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत केवल ऐतिहासिक स्मृतियों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि यह वर्तमान भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान, राष्ट्रीय एकीकरण, सामाजिक समरसता तथा वैश्विक स्तर पर भारत की सांस्कृतिक कूटनीति का एक सशक्त आधार भी है।

विशिष्ट शब्द : भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक विरासत, प्रारंभिक भारत, मध्यकाल, कला, स्थापत्य, धर्म, भक्ति आंदोलन, सांस्कृतिक समन्वय आदि।

प्रस्तावना

भारत की सांस्कृतिक विरासत विश्व की सबसे प्राचीन, समृद्ध एवं निरंतर विकसित होने वाली सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है। इसकी जड़ें प्रागैतिहासिक काल से लेकर सिंधु–सरस्वती सभ्यता, वैदिक युग, महाजनपद काल, मौर्य, गुप्त, हर्षवर्धन तथा प्रारंभिक एवं उत्तर मध्यकालीन राजवंशों तक फैली हुई हैं। भारतीय संस्कृति का विकास किसी एक जाति, धर्म, भाषा अथवा क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह विभिन्न सभ्यताओं, समुदायों, धार्मिक परंपराओं और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के दीर्घकालीन समन्वय का परिणाम है। इसी कारण भारतीय संस्कृति को 'विविधता में एकता' का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में निरंतरता, सहिष्णुता, समन्वय, आध्यात्मिकता, मानवीय मूल्यों तथा प्रकृति के प्रति सम्मान जैसे गुण विद्यमान रहे हैं, जिन्होंने इसे विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं से विशिष्ट पहचान प्रदान की है।[1]

सांस्कृतिक विरासत केवल प्राचीन स्मारकों, मंदिरों, स्तूपों, दुर्गों अथवा पुरातात्त्विक अवशेषों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें भाषा, साहित्य, दर्शन, धर्म, लोक परंपराएँ, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य, हस्तशिल्प, लोकज्ञान, रीति–रिवाज, सामाजिक संस्थाएँ तथा नैतिक मूल्य भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक विरासत किसी राष्ट्र की ऐतिहासिक स्मृति, सामाजिक पहचान तथा सभ्यतागत विकास की निरंतरता का आधार होती है। भारत में यह विरासत मूर्त एवं अमूर्त दोनों स्वरूपों में विद्यमान है, जो आज भी भारतीय समाज के सांस्कृतिक जीवन को दिशा प्रदान करती है।

* प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, आर.एल.एस.वाई. कॉलेज, औरंगाबाद, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

भारतीय संस्कृति का प्रारंभिक स्वरूप सिंधु–सरस्वती सभ्यता (लगभग 2600–1900 ई.पू.) में विकसित नगरीय जीवन, वैज्ञानिक नगर नियोजन, व्यापारिक गतिविधियों, धातुकर्म तथा धार्मिक प्रतीकों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसके पश्चात् वैदिक युग में धार्मिक अनुष्ठानों, दार्शनिक चिंतन, सामाजिक संगठन, शिक्षा व्यवस्था तथा वैदिक साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक परंपरा को नया स्वरूप प्राप्त हुआ। उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों तथा आरण्यकों ने भारतीय दर्शन, अध्यात्म तथा नैतिक मूल्यों को विकसित किया, जिसका प्रभाव आगे चलकर सम्पूर्ण एशिया तक दिखाई देता है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध एवं जैन धर्म के उदय ने भारतीय संस्कृति में नवीन वैचारिक चेतना का संचार किया। महात्मा बुद्ध एवं महावीर स्वामी ने कर्म, अहिंसा, करुणा, समानता एवं नैतिक जीवन पर बल दिया, जिससे धार्मिक सहिष्णुता तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति मिली। मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ सांस्कृतिक आदान–प्रदान को अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाया। उनके अभिलेख, स्तंभ, शिलालेख तथा स्तूप न केवल भारतीय कला एवं स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, बल्कि सांस्कृतिक एकीकरण के भी महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं।

गुप्तकाल (चौथी से छठी शताब्दी ई.) को भारतीय संस्कृति का 'स्वर्णयुग' कहा जाता है। इस काल में साहित्य, दर्शन, विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, चित्रकला, मूर्तिकला एवं मंदिर स्थापत्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। कालिदास, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, विष्णु शर्मा तथा अमरसिंह जैसे विद्वानों ने भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध किया। अजंता की भित्तिचित्र कला, देवगढ़ एवं भीतरगाँव के मंदिर तथा उत्कृष्ट मूर्तिकला भारतीय सांस्कृतिक उत्कर्ष के प्रतीक हैं।[2] इसी काल में भारतीय संस्कृति का प्रभाव दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक देशोंकृजैसे कंबोडिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड एवं वियतनाम–तक पहुँचा, जिससे भारतीय सभ्यता का वैश्विक स्वरूप विकसित हुआ।

प्रारंभिक मध्यकाल में विभिन्न क्षेत्रीय राजवंशों– जैसे प्रतिहार, पाल, राष्ट्रकूट, चोल, पल्लव, चालुक्य, परमार, चंदेल तथा कलचुरीकृने भारतीय संस्कृति को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। इस काल में क्षेत्रीय भाषाओं, मंदिर स्थापत्य, मूर्तिकला, लोककलाओं तथा धार्मिक आंदोलनों का उल्लेखनीय विकास हुआ। खजुराहो, कोणार्क, दिलवाड़ा, तंजावुर, एलोरा तथा महाबलीपुरम जैसे स्थापत्य स्मारक इस युग की सांस्कृतिक समृद्धि के साक्ष्य हैं। इन स्मारकों में निहित कलात्मक अभिव्यक्तियाँ भारतीय समाज की धार्मिक आस्था, तकनीकी दक्षता तथा सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करती हैं।

मध्यकालीन भारत में इस्लामी शासन के आगमन से भारतीय संस्कृति में नवीन तत्वों का समावेश हुआ। हिन्दू एवं इस्लामी परंपराओं के पारस्परिक संपर्क से स्थापत्य, संगीत, साहित्य, चित्रकला तथा भाषा के क्षेत्र में समन्वित संस्कृति का विकास हुआ। दिल्ली सल्तनत एवं मुगल काल में इंडो–इस्लामिक स्थापत्य शैली, फारसी साहित्य, लघुचित्र कला तथा शास्त्रीय संगीत की नई परंपराएँ विकसित हुईं। इसी काल में भक्ति एवं सूफी आंदोलनों ने धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समरसता एवं मानवतावाद को बढ़ावा दिया। कबीर, गुरु नानक, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई तथा सूफी संतों ने भारतीय समाज में सांस्कृतिक एकता एवं आध्यात्मिक समन्वय की भावना को सुदृढ़ किया।

भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण पक्ष इसकी अनुकूलन क्षमता भी है। विभिन्न विदेशी संपर्कों, व्यापारिक संबंधों, राजनीतिक परिवर्तनों तथा सामाजिक चुनौतियों के बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपनी मूल पहचान को बनाए रखते हुए नवीन तत्वों को आत्मसात किया। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति को एक 'जीवंत संस्कृति' कहा जाता है, जो अतीत की परंपराओं को वर्तमान की आवश्यकताओं के साथ जोड़ते हुए निरंतर विकास करती रही है। इस प्रक्रिया में धार्मिक विविधता, भाषाई बहुलता, लोक परंपराएँ, उत्सव, कला, शिल्प तथा सामाजिक संस्थाएँ भारतीय सांस्कृतिक जीवन की निरंतरता को बनाए रखने में सहायक रही हैं।

वर्तमान वैश्वीकरण, तीव्र नगरीकरण, तकनीकी परिवर्तन तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से पारंपरिक सांस्कृतिक विरासत अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। प्राचीन स्मारकों का क्षरण, लोककलाओं का लोप, पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों की उपेक्षा तथा सांस्कृतिक एकरूपता की प्रवृत्ति भारतीय विरासत के संरक्षण के लिए गंभीर चिंता का विषय है। ऐसे समय में भारत की सांस्कृतिक विरासत का ऐतिहासिक अध्ययन केवल अतीत के गौरव का वर्णन नहीं है, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य की सांस्कृतिक नीतियों, विरासत संरक्षण, सतत पर्यटन, राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक कूटनीति के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

सिंधु–सरस्वती सभ्यता : भारतीय संस्कृति की आधारशिला : सिंधु–सरस्वती सभ्यता (लगभग 2600–1900 ई.पू.) भारतीय सांस्कृतिक विकास का प्रथम संगठित चरण मानी जाती है। इस सभ्यता की सुव्यवस्थित नगर योजना, पक्की ईंटों के भवन, उन्नत जल–निकासी प्रणाली, सार्वजनिक स्नानागार, मानकीकृत माप–तौल तथा विकसित व्यापारिक नेटवर्क इसकी उच्च सांस्कृतिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के प्रमाण हैं। मातृदेवी, पशुपति–आकृति तथा वृक्ष–पूजा जैसे धार्मिक प्रतीकों से स्पष्ट होता है कि भारतीय धार्मिक परंपराओं की अनेक जड़ें इसी सभ्यता में निहित हैं। यह सभ्यता शहरी जीवन, आर्थिक संगठन तथा सांस्कृतिक अनुशासन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

वैदिक संस्कृति एवं सामाजिक–सांस्कृतिक संगठन : वैदिक काल (1500–600 ई.पू.) में भारतीय संस्कृति का वैचारिक एवं दार्शनिक स्वरूप विकसित हुआ। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों में धर्म, नैतिकता, सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा एवं दर्शन का विस्तृत प्रतिपादन मिलता है। आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, परिवार संस्था तथा यज्ञ–परंपरा सामाजिक जीवन के प्रमुख आधार बने। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, आध्यात्मिक विकास तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास भी था। उपनिषदों में आत्मा, ब्रह्म तथा मोक्ष जैसे दार्शनिक सिद्धांत भारतीय चिंतन की आधारशिला बने।

महाजनपद काल एवं सांस्कृतिक परिवर्तन : महाजनपद काल (600–322 ई.पू.) भारतीय इतिहास में नगरीकरण, व्यापारिक विस्तार तथा राजनीतिक संगठन का महत्वपूर्ण चरण था। इसी काल में अनेक नगरों का विकास हुआ और शिल्प, वाणिज्य तथा मुद्रा–प्रणाली को बढ़ावा मिला।[3] सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप नए धार्मिक एवं दार्शनिक आंदोलनों का उदय हुआ, जिन्होंने वैदिक परंपराओं के साथ वैकल्पिक चिंतन को जन्म दिया। यह काल भारतीय सांस्कृतिक बहुलता के विकास का महत्वपूर्ण आधार सिद्ध हुआ।

बौद्ध एवं जैन धर्म का सांस्कृतिक योगदान : छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध एवं जैन धर्म का उदय भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। इन धर्मों ने अहिंसा, करुणा, सत्य, अपरिग्रह तथा समानता जैसे मानवीय मूल्यों को समाज में प्रतिष्ठित किया। स्तूप, विहार, चौत्य तथा शिल्पकला के विकास के साथ–साथ पाली एवं प्राकृत भाषाओं के साहित्य को भी समृद्धि मिली। बौद्ध धर्म के प्रसार से भारतीय संस्कृति श्रीलंका, चीन, जापान, मध्य एशिया एवं दक्षिण–पूर्व एशिया तक पहुँची, जिससे भारत की सांस्कृतिक पहचान वैश्विक स्तर पर स्थापित हुई।

मौर्यकाल : राजनीतिक एकता एवं सांस्कृतिक विस्तार : मौर्य साम्राज्य भारतीय इतिहास का प्रथम विशाल साम्राज्य था जिसने सांस्कृतिक एकीकरण को नई दिशा दी। सम्राट अशोक ने धम्म की नीति के माध्यम से नैतिक मूल्यों, धार्मिक सहिष्णुता तथा लोककल्याण की भावना को बढ़ावा दिया। अशोक के शिलालेख एवं स्तंभ भारतीय प्रशासन, भाषा, कला तथा धार्मिक नीति के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। मौर्यकालीन स्तूप, शिल्पकला तथा पॉलिशयुक्त पत्थर की मूर्तियाँ भारतीय कला की उच्च गुणवत्ता को दर्शाती हैं।

गुप्तकाल : भारतीय संस्कृति का स्वर्ण युग : गुप्तकाल (चौथी–छठी शताब्दी ई.) को भारतीय संस्कृति का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में साहित्य, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, कला एवं स्थापत्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। कालिदास, आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा वात्स्यायन जैसे विद्वानों ने विश्वस्तरीय योगदान दिया। मंदिर स्थापत्य, मूर्तिकला तथा धातुकला में उल्लेखनीय प्रगति हुई। धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक समन्वय इस काल की प्रमुख विशेषताएँ थीं।

भारतीय कला, स्थापत्य एवं मूर्तिकला का विकास : प्राचीन भारत में कला केवल सौंदर्यबोध का माध्यम नहीं थी, बल्कि धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का भी प्रमुख साधन थी। सांची, भरहुत, अमरावती, अजंता, एलोरा, एलिफेंटा, खजुराहो तथा कोणार्क जैसे स्थापत्य भारतीय कला की विविध परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। नागर, द्रविड़ तथा वेसर मंदिर शैलियों का विकास भारतीय स्थापत्य कला की परिपक्वता को दर्शाता है।

शिक्षा, साहित्य एवं ज्ञान परंपरा : भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली विश्व की सर्वाधिक विकसित प्रणालियों में से एक थी। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला तथा वल्लभी जैसे विश्वविद्यालयों में देश–विदेश से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। संस्कृत, पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में दर्शन, व्याकरण, चिकित्सा, गणित, खगोलशास्त्र एवं साहित्य का व्यापक विकास हुआ। यह ज्ञान परंपरा भारतीय संस्कृति के बौद्धिक वैभव का प्रमाण है।

मध्यकालीन सांस्कृतिक समन्वय एवं भक्ति–सूफी आंदोलन : मध्यकाल में भारतीय संस्कृति ने अनेक नई सांस्कृतिक धाराओं को आत्मसात किया। भक्ति आंदोलन के संतों कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीरा आदिकृने जाति, पंथ एवं सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए भक्ति और मानवता का संदेश दिया। सूफी संतों ने प्रेम, सेवा, सहिष्णुता एवं आध्यात्मिक एकता पर बल दिया। इन आंदोलनों ने भारतीय समाज में सांस्कृतिक समरसता तथा धार्मिक सद्भाव को सुदृढ़ किया।

सांस्कृतिक विविधता में एकता : भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी विविधता में निहित एकता है। विभिन्न भाषाएँ, धर्म, जातीय समूह, लोक परंपराएँ तथा क्षेत्रीय संस्कृतियाँ एक साझा सांस्कृतिक धारा का निर्माण करती हैं। भारतीय समाज ने समय–समय पर बाहरी प्रभावों को आत्मसात करते हुए अपनी मौलिक पहचान को बनाए रखा। यही समन्वयवादी प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति की स्थायित्व एवं वैश्विक प्रासंगिकता का प्रमुख कारण है।

प्रस्तुत शोध–लेख 'भारत की सांस्कृतिक विरासत : प्रारंभ से मध्यकाल तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण' का उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक विकास की ऐतिहासिक यात्रा का समग्र अध्ययन करना है। इसमें सिंधु–सरस्वती सभ्यता से लेकर मध्यकाल तक सांस्कृतिक निरंतरता, परिवर्तन, समन्वय एवं विविधता का विश्लेषण किया गया है। साथ ही कला, स्थापत्य, साहित्य, धर्म, दर्शन, शिक्षा, सामाजिक संस्थाओं तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान के प्रमुख आयामों का ऐतिहासिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन इस तथ्य को स्थापित करने का प्रयास करता है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान भारतीय समाज की पहचान, लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता तथा वैश्विक सांस्कृतिक संवाद की एक सशक्त आधारशिला है।

साहित्य समीक्षा

लावण्या वेम्सानी (2024) भारतीय इतिहास के विभिन्न आयामों का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, भाषा, कला, साहित्य तथा सामाजिक इतिहास का अंतःविषयक अध्ययन किया गया है। ग्रंथ भारतीय सभ्यता की निरंतरता, सांस्कृतिक विविधता तथा वैश्विक प्रभाव पर विशेष बल देता है। यह पुस्तक भारतीय सांस्कृतिक विरासत के अध्ययन के लिए नवीन शोध–दृष्टिकोण उपलब्ध कराती है।[4]

हरीश त्रिवेदी (2024) भारतीय साहित्यिक इतिहास–लेखन की विभिन्न अवधारणाओं एवं भाषाई परंपराओं का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। यद्यपि इसका मुख्य फोकस साहित्य है, फिर भी यह भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन में इतिहास–लेखन की पद्धति एवं स्रोतों की महत्वपूर्ण समझ विकसित करती है।[5]

आलोका पराशर सेन (2023) पराशर सेन ने प्रारम्भिक दक्कन के सामाजिक, धार्मिक एवं स्थानीय इतिहास का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया है कि क्षेत्रीय संस्कृतियाँ भारतीय सांस्कृतिक विरासत की महत्वपूर्ण आधारशिला हैं। उन्होंने स्थानीय परंपराओं, धार्मिक संस्थाओं तथा लैंगिक आयामों को सांस्कृतिक विकास के साथ जोड़ा है।[6]

उपिन्दर सिंह (2008) सिंह ने प्रागैतिहासिक काल से बारहवीं शताब्दी तक भारतीय इतिहास का विस्तृत एवं स्रोत–आधारित अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने पुरातात्त्विक साक्ष्यों, अभिलेखों, मुद्राओं तथा साहित्यिक स्रोतों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, धर्म, समाज एवं कला के विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। यह ग्रंथ भारतीय सांस्कृतिक विरासत के अध्ययन के लिए सर्वाधिक प्रामाणिक आधुनिक स्रोतों में से एक माना जाता है।[7]

रोमिला थापर (2002) थापर ने भारतीय इतिहास के प्रारंभिक विकास, सांस्कृतिक निरंतरता एवं सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि भारतीय संस्कृति विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं के समन्वय से विकसित हुई। उन्होंने वैदिक, बौद्ध एवं उत्तर–वैदिक समाज के सांस्कृतिक स्वरूप का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।[8]

के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री (2014) शास्त्री ने दक्षिण भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परंपराओं का व्यापक अध्ययन किया। उनके अनुसार चोल, पल्लव एवं पांड्य शासकों ने भारतीय स्थापत्य, मूर्तिकला, समुद्री व्यापार तथा सांस्कृतिक प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[9]

गोविन्द चन्द्र पाण्डेय (2018) पाण्डेय ने भारतीय संस्कृति के दार्शनिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक विकास का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताओं आध्यात्मिकता, समन्वय एवं नैतिकताकृको इसकी स्थायी पहचान बताया।[10]

रामशरण शर्मा (1983) रामशरण शर्मा ने सामाजिक–आर्थिक इतिहास की दृष्टि से भारतीय संस्कृति के विकास का विश्लेषण किया। उन्होंने वर्ण व्यवस्था, कृषि, नगरीकरण तथा आर्थिक संरचना के सांस्कृतिक प्रभावों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया।[11]

डी. डी. कोसांबी (1956) डी. डी. कोसांबी ने भारतीय इतिहास के अध्ययन में वैज्ञानिक एवं मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रयोग किया। उन्होंने पुरातत्त्व, मानवशास्त्र एवं साहित्यिक स्रोतों के समन्वित उपयोग द्वारा भारतीय संस्कृति के विकास की व्याख्या की। उनका अध्ययन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि को समझने में अत्यंत उपयोगी है।[12]

उपरोक्त साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों धर्म, दर्शन, कला, स्थापत्य, साहित्य, समाज एवं राजनीति का पृथक–पृथक अध्ययन किया है। कुछ शोध प्राचीन भारत पर केंद्रित हैं, जबकि कुछ मध्यकालीन सांस्कृतिक विकास या क्षेत्रीय इतिहास तक सीमित हैं। किन्तु 'भारत की सांस्कृतिक विरासत : प्रारंभ से मध्यकाल तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण' विषय पर ऐसा समग्र अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है जिसमें सिंधु–सरस्वती सभ्यता से लेकर मध्यकाल तक सांस्कृतिक निरंतरता, परिवर्तन, समन्वय, कला, स्थापत्य, धर्म, शिक्षा, साहित्य तथा सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का एकीकृत ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हो। यही शोध–अंतर इस अध्ययन की मौलिकता एवं प्रासंगिकता को स्थापित करता है।

उद्देश्य

1. भारत की सांस्कृतिक विरासत के ऐतिहासिक विकास का प्रारंभिक काल से मध्यकाल तक समग्र अध्ययन करना।
2. भारतीय संस्कृति की निरंतरता, परिवर्तन एवं समन्वय की ऐतिहासिक प्रक्रिया का विश्लेषण करना।
3. सिंधु–सरस्वती सभ्यता, वैदिक संस्कृति, बौद्ध एवं जैन परम्पराओं के सांस्कृतिक योगदान का मूल्यांकन करना।
4. मौर्य, गुप्त, हर्ष, चोल, पल्लव, राष्ट्रकूट, प्रतिहार एवं अन्य प्रमुख राजवंशों के सांस्कृतिक योगदान का अध्ययन करना।
5. भारतीय कला, स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला एवं साहित्य के विकास का ऐतिहासिक विश्लेषण करना।

परिकल्पना

1. सिंधु–सरस्वती सभ्यता से मध्यकाल तक भारतीय संस्कृति में निरंतरता एवं परिवर्तन दोनों की प्रक्रियाएँ समानांतर रूप से विद्यमान रहीं।
2. भारतीय सांस्कृतिक विकास में धार्मिक आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा।
3. भारतीय स्थापत्य, मूर्तिकला एवं चित्रकला ने सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
4. भक्ति एवं सूफी आंदोलनों ने सामाजिक समरसता एवं सांस्कृतिक समन्वय को सुदृढ़ किया।

विश्लेषण

प्रारंभ से मध्यकाल तक भारत की सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय संस्कृति किसी एक युग, धर्म या समुदाय की देन नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विकास का परिणाम है। सिंधु–सरस्वती सभ्यता की सुव्यवस्थित नगर योजना, धातुकर्म, व्यापारिक संगठन तथा धार्मिक प्रतीकों ने भारतीय संस्कृति की प्रारम्भिक आधारशिला रखी। वैदिक काल में वेद, उपनिषद, यज्ञ परम्परा, आश्रम व्यवस्था एवं गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने भारतीय समाज को दार्शनिक एवं नैतिक आधार प्रदान किया। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध एवं जैन धर्म के उदय ने भारतीय संस्कृति में समानता, अहिंसा, करुणा एवं नैतिकता जैसे मूल्यों को स्थापित किया। मौर्य सम्राट अशोक के शासनकाल में भारतीय संस्कृति का अंतरराष्ट्रीय विस्तार हुआ तथा बौद्ध धर्म एशिया के अनेक देशों तक पहुँचा। गुप्तकाल में साहित्य, विज्ञान, गणित, चित्रकला, मूर्तिकला एवं मंदिर स्थापत्य का अभूतपूर्व विकास हुआ, जिसके कारण इसे भारतीय संस्कृति का स्वर्णयुग कहा जाता है।

प्रारंभिक मध्यकाल में क्षेत्रीय राजवंशों ने भारतीय स्थापत्य एवं कला को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। खजुराहो, एलोरा, महाबलीपुरम, तंजावुर तथा दिलवाड़ा जैसे स्थापत्य स्मारक भारतीय सांस्कृतिक उत्कर्ष के प्रमाण हैं। मध्यकाल में हिन्दू एवं इस्लामी सांस्कृतिक परम्पराओं के समन्वय से एक मिश्रित सांस्कृतिक परम्परा

विकसित हुई। भक्ति एवं सूफी संतों ने धार्मिक सहिष्णुता, मानवतावाद एवं सामाजिक समरसता को प्रोत्साहित किया।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत की सबसे बड़ी विशेषता इसकी निरंतरता, समन्वयशीलता, अनुकूलन क्षमता तथा विविधता में एकता है। यही गुण भारतीय संस्कृति को विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं से विशिष्ट बनाते हैं। वर्तमान समय में यह विरासत राष्ट्रीय पहचान, सांस्कृतिक कूटनीति, पर्यटन, सामाजिक सद्भाव तथा सतत विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत की सांस्कृतिक विरासत विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं निरंतर विकसित होने वाली सांस्कृतिक परम्पराओं में से एक है। प्रारंभिक सभ्यताओं से लेकर मध्यकाल तक भारतीय संस्कृति ने अनेक राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तनों को आत्मसात करते हुए अपनी मौलिकता एवं निरंतरता को बनाए रखा। सिंधु–सरस्वती सभ्यता की नगर योजना, वैदिक दर्शन, बौद्ध एवं जैन धर्म की मानवीय शिक्षाएँ, मौर्यकालीन सांस्कृतिक एकीकरण, गुप्तकालीन कला एवं साहित्य तथा मध्यकालीन भक्ति एवं सूफी परम्पराओं ने भारतीय संस्कृति को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया।

अध्ययन से यह भी सिद्ध होता है कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि वर्तमान भारतीय समाज की राष्ट्रीय पहचान, सामाजिक समरसता, लोकतांत्रिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक विविधता का आधार है। भारतीय कला, स्थापत्य, साहित्य, दर्शन एवं लोक परम्पराएँ आज भी वैश्विक स्तर पर भारतीय सभ्यता की विशिष्ट पहचान स्थापित करती हैं।

अतः इस अमूल्य विरासत का संरक्षण, प्रलेखन, डिजिटलीकरण तथा भावी पीढ़ियों तक इसका प्रभावी हस्तांतरण समय की अनिवार्य आवश्यकता है।

अंततः यह अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करता है कि भारत की सांस्कृतिक विरासत ने न केवल भारतीय सभ्यता के विकास को दिशा प्रदान की, बल्कि विश्व संस्कृति को भी शांति, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता एवं 'वसुधैव कुटुम्बक' जैसे सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से समृद्ध किया।

सन्दर्भ सूची

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव (2009) हिन्दू सभ्यता में नारी का स्थान (हिन्दी संस्करण) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 68
2. बाशम, आर्थर ल्लेवलिन (2018) अद्भुत भारत (हिन्दी संस्करण) नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 128
3. मजूमदार, रमेश चन्द्र (1951–1977) भारतीय जनता का इतिहास एवं संस्कृति (बहुखण्डीय ग्रन्थ) मुम्बई, भारतीय विद्या भवन, पृ0 137
4. वेम्सानी, लावण्या (2024) भारतीय इतिहास हस्तपुस्तिका, सिंगापुर, स्प्रिंगर नेचर,
5. त्रिवेदी, हरीश (2024) भारतीय साहित्यिक इतिहासलेखन : अवधारणाएँ, भाषाएँ और इतिहास, नई दिल्ली, साहित्य अकादमी, पृ0 29
6. सेन, आलोका पराशर (2023) प्रारम्भिक दक्कन में लिंग, धर्म एवं स्थानीय इतिहास, नई दिल्ली, प्राइमस बुक्स, पृ0 81
7. सिंह, उपिन्दर (2019) प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास : पाषाण युग से 12वीं शताब्दी तक (हिन्दी संस्करण) नई दिल्ली, पियर्सन इंडिया, पृ0 58
8. थापर, रोमिला (2022) प्रारम्भिक भारत : उद्भव से 1300 ईस्वी तक (हिन्दी संस्करण) नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 69
9. नीलकण्ठ शास्त्री, के. ए. (2014) दक्षिण भारत का इतिहास (हिन्दी संस्करण) नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 104
10. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र (2018) भारतीय संस्कृति का विकास, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, पृ0 93
11. शर्मा, रामशरण (1983) प्राचीन भारत, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 6
12. कोसांबी, दामोदर धर्मानन्द (1956) भारतीय इतिहास के अध्ययन की भूमिका (हिन्दी संस्करण) नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 68

◀◀ ▶▶

मालवांचल के लोक संगीत की सांस्कृतिक परम्परा एवं स्वरूप समीक्षात्मक अध्ययन

चेतन सिंह राजपूत*
डॉ. अपर्णा अग्निहोत्री**

शोध सारांश-

प्रस्तुत शोध आलेख में मालवा क्षेत्र के लोक-संगीत की उत्पत्ति, विकास, सांस्कृतिक महत्ता तथा सामाजिक उपयोगिता का विस्तृत अध्ययन किया गया है। आलेख में लोक-संगीत को प्रकृति और मानव जीवन की सहज अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि इसका उद्भव मानव की प्राकृतिक अनुभूतियों, श्रम, उत्सवों और सामाजिक जीवन से हुआ। मालवांचल का लोक-संगीत धार्मिक आस्था, लोक-परम्पराओं, संस्कारों, पर्व-त्योहारों तथा जनजीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है। अध्ययन में लोक-संगीत के प्रमुख तत्व- स्वर, ताल, लय, अनुशासन, प्रेरक शक्ति, सृजनात्मकता एवं दिव्यत्व का विश्लेषण किया गया है। साथ ही मध्यकालीन मालवा की संगीत परम्परा, रूपमती एवं बाजबहादुर के योगदान तथा विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीतों जैसे विवाह, जन्म, गणगौर, संजा, होली, भक्ति एवं संस्कार गीतों का परिचय भी दिया गया है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि मालवांचल का लोक-संगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक एकता और लोकजीवन की भावनाओं का सशक्त दस्तावेज है।

कुंजी शब्द – मालवांचल, लोक-संगीत, लोक-संस्कृति, सांस्कृतिक परम्परा, लोकगीत

लोक-संगीत प्रकृति की सहज एवं अनुपम देन है, जो मानव जीवन की भावनाओं और अनुभवों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। प्रकृति की लय, ध्वनियों और परिवर्तनों से प्रेरित होकर मानव ने लोक-संगीत का सृजन किया, जो आत्म-अभिव्यक्ति और सामूहिक जीवन का सशक्त माध्यम बना। मालवा का लोक-संगीत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं, धार्मिक आस्था, लोक-रीति-रिवाजों और सामाजिक जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है। यहाँ के लोकगीत जन्म से लेकर मृत्यु तक, तथा विभिन्न संस्कारों, पर्व-त्योहारों और लोक-उत्सवों में जनजीवन की भावनाओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार लोक-संगीत मालवा की सांस्कृतिक विरासत और लोक-चेतना का जीवंत प्रतीक है।

मानव ने अपने हृदय की सरल अनुभूतियों को अपनी विभिन्न मुद्राओं तथा अंग-संचालन प्रकट करते हुए आनन्द की अनुभूति प्राप्त की तथा ऐसा प्रतीत होता है कि यही प्रतीति संगीत और नृत्य का आधार बनी। धीरे-धीरे लोक में संगीत और नृत्य की विभिन्न विधाए विकसीत होती गई और इनमें प्रचलन विभिन्न रूपों में बढ़ता गया। आगे चलकर लोक में संगीत की प्रतिष्ठा बढ़ी, उसे संस्कार का अंग माना जाने लगा और उसका शास्त्र के रूप में विकास हो गया।[1] पाणिनी की अष्टाध्यायी[2] में संगीत के अंग-नाट्य के सूत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। नाट्य शास्त्र का अध्ययन ऋग्वेद के चरण के अंतर्गत हुआ था।[3] पाणिनी[4], जातक[5] तथा अर्थशास्त्र[6] में गायक, वादक और नाट्यकारों को शिल्पी माना जाता है। पाणिनी के सूत्रों में उदात्त और अनुदात्त स्वरों के समाहार से 'स्वरित' का उद्भव बताया गया है।[7] भरत के नाट्य शास्त्र की रचना ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी की मानी जाती है, परंतु इससे भी पूर्व नंदी और दत्तिल नामक संगीताचार्यों द्वारा अनके नृत्यों का उल्लेख मिलता है।[8] गुप्तकाल में कालिदास, विशाखादत्त आदि अनेक कवियों ने अपने नाटक लिखे, जो काव्य की दृष्टि से तो अनुपम हैं, परंतु अभिनय-कला की दृष्टि से भी सुंदर हैं, इनमें संगीत एवं नृत्य का उल्लेख मिलता है।[9] प्राचीन समय में मालव-वीरों की तुलना साहसी, रसिक तथा संगीत प्रेमी से की जाती थी। जयदेव के गीत-गोविन्द तथा उससे प्रभावित परवर्ती रसिक गीति-काव्यों के कई गीत मालवाराग की तालललयानुसार निबद्ध हैं और इनका मालवा राग लोकप्रिय था।[10]

कलाओं का मूल उद्देश्य मानव-मन की भावनाओं को उत्कर्ष प्रदान कर उसे रस की अनुभूति कराना है। यह अनुभूति केवल संगीत या नृत्य तक सीमित नहीं है, बल्कि किसी भी ऐसी गतिविधि में प्राप्त हो सकती है, जिसमें मनुष्य पूर्ण रूप से तल्लीन हो जाता है। जैसे खेलों में एकाग्रता और आनंद की अनुभूति होती है, उसी प्रकार नृत्य, गीत और संगीत भी मन को गहन आनंद प्रदान करते हैं। स्वर, ताल और लय का मानव मन एवं मस्तिष्क पर अत्यंत प्रभावशाली प्रभाव पड़ता है, इसलिए संगीत को श्रेष्ठ कलाओं में स्थान दिया गया है।

* शोधार्थी, संगीत विभाग, वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाजविज्ञान संस्था, नागपुर
** शोध निर्देशिका, संगीत विभाग, वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाजविज्ञान संस्था, नागपुर

शास्त्रीय संगीत में तकनीकी जटिलताओं और नियमों की प्रधानता अधिक होने के कारण वह सामान्य जनमानस तक सहज रूप से नहीं पहुँच पाता, जबकि लोक-संगीत अपनी सरलता, स्वाभाविकता और सहज अभिव्यक्ति के कारण सभी वर्गों और आयु के लोगों को शीघ्र आकर्षित करता है। जीवन के विविध अनुभव जब लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं, तो वे स्वतः ही भावों और रसों की धारा प्रवाहित करने लगते हैं। लोक-संगीत की सरल भाषा और सहज शब्दावली प्रत्येक व्यक्ति को समझ में आती है तथा अपने अर्थ और भावों के माध्यम से श्रोताओं को भाव-विभोर कर देती है।

लोक-संगीत की धुन भले ही छोटी और सरल होती है, परन्तु उसमें निहित भाव अत्यंत व्यापक और गहरे होते हैं। इसके विपरीत शास्त्रीय संगीत में शब्दों की अपेक्षा स्वर-विस्तार और तकनीकी पक्ष की प्रधानता होती है। यही कारण है कि लोक-संगीत अपने भावात्मक स्वरूप के कारण मानव हृदय को अधिक प्रभावित करता है। विभिन्न अवसरों—जन्म, विवाह, पर्व-त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान और मृत्यु जैसे जीवन के महत्वपूर्ण पड़ावों—से जुड़े लोकगीत अपनी सरल स्वर-रचना और सहज भाषा के कारण मनुष्य को उसकी संस्कृति, समाज और मिट्टी से जोड़ देते हैं। इस दृष्टि से यह कहना उचित है कि लोक-संगीत व्यक्ति और समाज के सुख-दुःख, आशा-निराशा और जीवन-अनुभवों का सजीव प्रतिबिंब है।

यद्यपि लोक-संगीत के छंद संक्षिप्त होते हैं, फिर भी भावों के अनुरूप होने के कारण वे श्रोता के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। इसके भावों की शाश्वतता ही उसे सदैव नवीन और जीवंत बनाए रखती है। गायक और श्रोता के बीच सीधा भावनात्मक संबंध स्थापित करने की क्षमता लोक-संगीत को अन्य संगीत शैलियों से विशेष बनाती है। इसकी सशक्त भाव-अभिव्यक्ति के कारण ही लोक-संगीत विश्वभर में लोकप्रिय और प्रभावशाली बना हुआ है।

लोक-संगीत से प्रेरणा लेकर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शास्त्रीय संगीत के आधार पर भावपूर्ण स्वरों और काव्यात्मक शब्दों का समन्वय कर एक नवीन संगीत शैली का निर्माण किया, जिसे रवीन्द्र-संगीत के नाम से जाना जाता है।

लोक-संगीत में मानव जीवन के लगभग सभी भावों का स्वाभाविक चित्रण मिलता है। माँ की ममता, मृत्यु का विषाद, निर्धन और पीड़ित व्यक्ति की करुणा, प्रेम, ईर्ष्या, राग-द्वेष, उल्लास, आकांक्षा, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह, आशा और निराशा जैसे विविध भाव लोकगीतों में सहज रूप से अभिव्यक्त होते हैं। यही भाव-समृद्धि लोक-संगीत को विश्वभर में लोकप्रिय बनाती है।

लोक-संगीत के भाव-पक्ष का विश्लेषण करने पर इसके कुछ प्रमुख तत्व सामने आते हैं—

अनुशासन- लोक-संगीतकार अपनी परम्परागत कला और सांस्कृतिक विरासत को जीवित रखने के उद्देश्य से उसका प्रस्तुतीकरण करते हैं। वे व्यक्तिगत अहंकार से दूर रहकर परम्पराओं और लोक-मान्यताओं के अनुसार अपनी कला को सहज एवं मुक्त भाव से प्रस्तुत करते हैं।

प्रेरक शक्ति- लोक-संगीत समाज, जाति, समुदाय, धर्म, पर्व-त्योहार और राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लोक कलाकार अपने अनुभवों और भावनाओं को उत्साहपूर्वक प्रस्तुत करते हैं। लोक-संगीत की यही प्रेरक शक्ति सामाजिक एकता, सांस्कृतिक संरक्षण और समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सृजनात्मक शक्ति- संगीत मानसिक तुष्टि का लक्ष्य अपने सुमधुर तंरगों द्वारा पूरा करता है। लोकरंजन का यह सशक्त माध्यम रचनात्मक होता है।[11]

लोक-संगीत किसी जटिल बौद्धिक विश्लेषण अथवा बौद्धिक अभिव्यक्ति की अपेक्षा नहीं करता। इसकी मूल प्रेरणा सहज अनुभूति और हृदयगत भावनाओं से उत्पन्न होती है। लोक-संगीत का कलाकार स्वाभाविक रूप से भावों से जुड़कर शीघ्र ही संवेदनशील हो जाता है और सांसारिक सुख-दुःख से ऊपर उठकर एक विशिष्ट आनंद की अनुभूति करने लगता है। इस अवस्था में उसका मानसिक स्तर सृजनात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण हो जाता है, जिससे उसमें नवीन प्रेरणा, नवीन भाव और नवीन रसों की अभिव्यक्ति करने की क्षमता विकसित होती है।

स्वर, ताल और लय तत्व- लोक-संगीत में स्वर, ताल और लय का विशेष महत्व होता है। लोक-संगीतकार निम्न स्वरों से उच्च स्वरों की ओर तथा उच्च स्वरों से पुनः निम्न स्वरों की ओर सहज गति करते हुए अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। वे छोटी-सी छोटी लोक-धुन में भी इतने तल्लीन हो जाते हैं कि भावों को प्रकट करने के लिए किसी विशेष स्वर-विन्यास, जटिल ताल-रचना अथवा नवीन लय-प्रयोग का प्रदर्शन आवश्यक नहीं समझते।

उनकी समस्त अनुभूतियाँ और भावनाएँ परम्परागत लोक-धुनों में ही समाहित होकर प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त होती हैं। सरल स्वर-रचना और स्वाभाविक लय के माध्यम से लोक-संगीत स्वयं ही विभिन्न रसों का संचार करता है। यही सहजता और भाव-प्रवणता लोक-संगीत को जनमानस के हृदय से जोड़ती है और उसे सदैव जीवंत बनाए रखती है।

दिव्यत्व- आत्म-समर्पण की भावना लोक-संगीतकार के हदय में कला-प्रदर्शन के पूर्व से ही विद्यमान रहती है, अतः सभी कलाकारों का मानसिक-धरातल लोक-धुनों पर तैरता हुआ एकत्व की अनुभूति कराने में सफल सिद्ध होता है। उनका भौतिक-अस्तित्व उन दिव्य क्षणों में तिरोहित हो जाता है और उनका यही एकत्व, दिव्यत्व की कसौटी सिद्ध होता है।[12]

मालवांचल में भिन्न-भिन्न अवसरों पर जो गीत गाये जाते हैं, उसे लोक-संगीत कहा जाता है। लोक-संगीत के संस्कारयुक्त संस्करण को शास्त्रीय-संगीत की संज्ञा दी गई है। क्लिष्टता बढ़ जाने के कारण शास्त्रीय-संगीत समाज के लिए अरंजक और दुरूह होता चला गया। वास्तव में लोकगीत सृष्टि की प्रकृति है। वायु की सनसनाहट, पानी की कल-कल ध्वनि, पक्षियों का चहकना सभी में संगीत झलकता है। लोकगीत व्यक्ति की आत्मा में सहज रूप से रच चुका है। व्यक्ति चाहे सुनसान पथ पर अकेला चल रहा हो यो, खेत ख्लिहान में काम कर रहा हो, वह कुछ गुनगुनाता मिल जाएगा। चक्की पीसती, धान कुटती, पानी भरकर घर लाती हुई महिलाएं भी गीत और भजन गाकर अपना मन बहला लेती हैं तात्पर्य यह है कि किसी भी परिस्थिति में संगीत मनुष्य की उर्जावान् और स्फुर्तिवान बना देता है, सभी सामाजिक और धार्मिक कृत्यों और उत्सवों पर वातावरण गीत संगीतमय होता है। गीत गाना मानव का स्वभाव है। मानव-सभ्यता के साथ गीत जुड़ा हुआ है।[13]

मालवा के मध्यकालीन इतिहास में संगीत और कला के क्षेत्र में अनेक महान विभूतियों का उल्लेख मिलता है। उनमें रूपमती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रूपमती एक प्रतिभाशाली संगीतज्ञ और कला-प्रेमी थीं। वे मालवा के शासक बाज बहादुर की पत्नी थीं। बाज बहादुर स्वयं भी संगीत के महान ज्ञाता और कला के संरक्षक थे। रूपमती की अद्भुत संगीत प्रतिभा और मधुर गायन से प्रभावित होकर उन्होंने उन्हें अपनी रानी का सम्मान प्रदान किया।

रूपमती केवल एक कुशल गायिका ही नहीं, बल्कि वीणा वादन में भी निपुण थीं। उन्हें विभिन्न राग-रागिनियों का गहन ज्ञान था। उनकी संगीत साधना, मधुर स्वर और कलात्मक प्रतिभा के कारण वे मालवा की संगीत परम्परा में एक विशिष्ट स्थान रखती हैं।

मध्यप्रदेश और राजपूताना के क्षेत्रों में मध्यकाल के दौरान गायकों के दो प्रमुख वर्ग प्रचलित थे—चारण और भाट। ये लोक कलाकार अपने आश्रयदाताओं अर्थात् राजाओं और सामंतों के गुणों, पराक्रम और यश का वर्णन अपने गीतों एवं काव्यात्मक प्रस्तुतियों के माध्यम से करते थे। उनके गायन में वीरता, प्रशंसा और ऐतिहासिक घटनाओं का प्रभावशाली चित्रण मिलता था।

उस समय संगीत और लोक-परम्पराओं में विभिन्न वाद्य यंत्रों का भी विशेष महत्व था। तुरही और सींग जैसे वाद्य यंत्रों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता था, जो विशेष अवसरों, उत्सवों और राजकीय आयोजनों में संगीत की गरिमा को बढ़ाते थे। इस प्रकार मध्यकालीन मालवा की संगीत परम्परा शास्त्रीय एवं लोक दोनों तत्वों से समृद्ध और प्रभावशाली रही।

मालवा-क्षेत्र की संस्कृति में जन्म से लेकर मृत्यु तक लोकगीतों का समावेश पाया जाता है, जिनमें शिशु-गीत, बालिकाओं के गीत, जच्चा-गीत, ऋतुओं के गीत, त्योहारों के गीत, संस्कारों के गीत, विवाह के गीत, भक्ति के गीत आदि अधिक लोकप्रिय हैं।

मालवांचल के लोकगीत - मालवांचल में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले कुछ विशिष्ट प्रकार के लोकगीत निम्न है-

सती भेरू के गीत- किसी भी मांगलिक कार्य के पूर्व गाये जाते है।

भेरूजी तमारा दिया हो बाला पूत, दूध पीये सूरया गाय को ।
सतीमाता तमारा दिया हो बाला पूत, दूध पीये सूरया गाय को।।[14]
नानो मोटो छबलियो गुथाऊँ म्हारी मात।
छोटो मोटो छबलियो गुथाऊँ म्हारी मात।
आज म्हारी सती माता फुलड़ा बिनवा जाया।।[15]
भेरूजी लीपियो ने छाबियो तमारो ओटलो।
भेरूजी पगल्यारा मांडन वाला दोनी जी।।[16]

सीतला माता- यह सीतला माता की पूजा के समय गाया जाता है।

कुंकू भरी रे चगेड़ली, माता यो मठ पूजन जाय।
मेहन्दी भरी रे चगेड़ली, माता यो मठ पूजन जाय।।[17]

परबतिया- विवाह के अवसर पर प्रातः काल गाये जाते है।

सूरज उगो हो केवड़ारी पड़छे बियानोलीया भल उगीया।
तम जागो हो सूरजजी रा देव बियानोलीया भल उगीया।।[18]

हल्दी गीत- विवाह के समय वर या वधू को हल्दी चढ़ाते समय गाया जाता है।

तू तो पीलो रे लाड़ा पीलो काई गणे,
थारी माता ने छठी रे जगाई हल्दीरा रूख लगे।[19]

मेहन्दी- यह वर-वधू को मेहन्दी लगाते समय गाया जाता है।

मेहन्दी बोई खेत में वा उगी काला खेत में।
मेहन्दी बोइ हो राज।
नाना देवर लाड़लो उ मेहन्दी को रखवालो
मेहन्दी बोइ हो राज।[20]

सेवरो- यह गीत दूल्हें को सेहरा पहनाते समय गाया जाता है।

जोशी डारी गलिया हुई नीसरी औ मालनी।
करी गई लगना रो चाव हावो फुलमालनी।।[21]

सुहाग- यह वधू के विवाह में गाया जाता है।

बनड़ी उबी दादाजी के दरबार दो म्हारी दादीजी अखंड सुहाग।
ओरा ने देखा बाई पुड़िया बंधाए।।[22]

माण्डवा- यह मण्डप आच्छादन के समय गाया जाता है

बई वा कासे तो आई पीली चिरकली।
बई वा कासे तो आयो माणक खंब मोतीया छायो माण्डवो।।[23]

मामेरा- विवाह के समय मामा-पक्ष द्वारा कपड़े आदि भेट दिये जाते समय गाया जाता है।

बीरा रमाझमा से म्हारा या आजो
सिरदार भतीजा लारा लाजो रे
बीरा रमाझमा से म्हारा या आजा।[24]

गाली- वधू की विदाई के समय तथा जब ससुराल वाले लड़की को लेने आते है, तब गाया जाता है।

हाथ में जलेबी और मुट्ठी में चना
कई वो ब्याइजी तम श्याणा घणा
ऐसी कई रामजी की चोरी करी
की जाड़ी लुगाई तमारा पाला पड़ी।।

बधावा- घर में शुभ कार्य सम्पन्न होने पर गाया जाता है।

1. मने झाड़ नारियल बोया वाकी छाया लटलट आया हो।
   मने यो ही बदावो प्यारो लागे[25]
2. बाला तो लागे पूत सवाया लागे भानजी जी म्हारा राज
   कहा तो खेले पूत कहा तो खेले भानजा जी म्हारा राज।[26]

जच्चा- घर-परिवार में शिशु के जन्म के पश्चात सम्पन्न होने वाले संस्कारों के समय ये गीत गाये जाते है।

1. सवा मन सोठ अढ़ाई मन अजमो दोई मिल खांडा धमको लोग सुनेगा।[27]
2. तम तो जच्चा रानी लाल लई के सूता, गोपाल लई के सूता।
   हमने मचाई दोड़ा-दोड़ इना घर में ।

जन्म-संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में से ही एक होता है- धनबऊ गीत। धनबऊ शब्द का अर्थ है- धन्यबहू। प्रसूता के सम्मान में गाये जाने वाले गीतो को धनबऊ कहते हैं। प्रूसता को जो वस्तुएं दी जाती हैं, उनके नाम से यह गीत गाया जाता है-

ऐले पार गंगा ने पेले पार जमना,
बीच में सीये दरजी रो लाल।
धनबऊ के अंगियारो चाव,
मोरा दिखे अम्बियारों चाव।[28]

संजा के गीत- पितृपक्ष में मनाये जाने वाले संजाबाई के पर्व के दौरान ये गीत गाये जाते है।

1. संजा तो मांगे हरो-हरो गोबर कासे लउ बई हरो-हरो गोबर।
2. संजा तू थारा घरे जा के थारी मा मारेगी के कूटेगी के डेली में दचकोड़ेगी ।
3. छोटी सी गाड़ी रड़कती जाय जीमे बेठी संजाबई।
   घाघरो घमकाती जाय चूड़लो चमकाती जाय।।

छींक माता के गीत- ये छींक माता की मनौती पूरी होने पर गाये जाते है।

1. केसी टूटी नगरी के राजा केसे लोगन पे
2. छीकत हो गौरी ने कन्या परणाई मेरे राज जमाई जी की तुम रखवाल ओ छीक माता।

गणगौर के गीत- गणगौर की पूजा के दौरान सौभाग्यवती स्त्रिया ये गीत गाती है।

1. जऊ का जवारा माता कंकु का क्यारा।
   जऊ म्हारे लेरिया ली रहा जी।।[29]
2. ईशवर जी बैठियो रथ में रथ हांकियो हलकारी ने
   बगले गाड़ी निकली रनुबई देखे झाकी रे
   टीको पेरियो लरिया पेरी बिन्दिया लगाई सवारी ने[30]

गणगोर की पूजा के समय हरी दूरवा से पूजा करते हुए यह गीत गाया जाता है-

गौर-गौर गोमती
ईशवर पूजे पारवती
पारवती का आला लीला गोर के सोना का टीला।[31]

पथवारी- जब परिवार के सदस्य तीर्थ यात्रा पर जाते है, तो उनके लौटने तक घर में पथवारी की पूजा करते हुए यह गीत गाया जाता है-

यो तो गंगाजी री बाट आटलो यो तो बठी गयो सगलो संग हो राम
करो गंगा माई की आरती
म्हारे बिछड़िया पिताजी माता बई मिलाओ हो राम।[32]

त्योहारों के गीत- दिपावली के समय मालवा क्षेत्र में गवली (यादव) लोगो में छल्लो बोल गीत गाया जाता है जो इस प्रकार है-

छल्लो छाछ में रांदू राबड़ी, दूध में रांदू खीर तु तो खई ले रे नाना वीर।

फाग और रसिया- होली उत्सव पर गाया जाने वाला फाग मालवा में बहुत प्रसिद्ध है, फाग के साथ ही रसिया भी गाये जाते है। ये गीत त्यौहार की उमंग और उल्लास को दर्शाते है।

आज बिरज में होली रे रसिया।
किशनजी मोती तो पेनाओं म्हारा रंग से भरिया दोई हाथ।[33]

लोकोन्मुखी संतपरक लोकगीत- मालवा में भक्ति गीतों में निर्गुणी भजन भी बहुत गाये जाते है।

1. चादर झीनी राम झीनी चादर झीनी
2. जरा धीरे-धीरे गाड़ी हाको मेरे राम गाड़ी वाले
3. तने हीरा सो जनम गवायों भजन बिना बांवरा।

तुलसी और आंवलो- मालवा में भी वृक्ष की पूजा का बहुत महत्व है, यहां आंवले के वृक्ष और तुलसी की पूजा का विशेष विधान होता है, इनकी पूजा के समय इनसे सम्बन्धित विशेष गीत गाये जाते है-

1. तुलसा रे आंगन रामकिशन पधारिया,
   तो तुलसा किसन हर ने प्यारा हो राम,
   केलत सींचू राम केलत पूजू।
2. हरजी तो बोयो आवलो उग्यो घेर घमेर
   सागली गोप्या रे मन्दिर बाटियों भूल्यो राधा रो मेल।[34]

निष्कर्ष- मालवांचल का लोक-संगीत इस क्षेत्र की सांस्कृतिक परम्परा, लोक-आस्था और सामाजिक जीवन का सशक्त माध्यम है। यह लोकजीवन के संस्कारों, पर्व-त्योहारों तथा जनभावनाओं को सहज रूप से अभिव्यक्त करते हुए सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः इस अमूल्य लोक-संपदा का संरक्षण एवं संवर्धन समय की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. शोध समवेत, पृ. 25
2. अष्टाध्यायी 4/8/29
3. शरण, डॉ.,वासुदेव, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, , पृ. 330
4. अष्टाध्यायी 4/4/56 , 3/21/145, 146,147
5. खत्तिवादी जातक, 3/40
6. अर्थशास्त्र, 1,44,2,17,4,10
7. अष्टाध्यायी 4 /2,29,30,31,32
8. नरसिंहाचार्य, वी. वी., दि अर्ली राइटर्स आन म्यूजिक.
9. विद्यालंकार, सत्यकेतु, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ. 376
10. राजपुरोहित, भगवतीलाल, पुरातत्व प्राचीन मालवा परम्परा, पृ. 38
11. शर्मा, आचार्य, श्रीराम, शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म.
12. वसंत, संगीत विशारद, पृ. 566-567
13. दीक्षित, विद्यापति, आनन्द प्रकाश, पृ. 51
14. दुबे, नरेशचन्द्र, ब्याव का लोकगीत, संकलन, पृ. 42
15. वही, पृ. 10
16. वही, पृ. 12
17. दुबे, नरेशचन्द्र, ब्याव का लोकगीत, संकलन, पृ. 13
18. वही, पृ. 16
19. वही, पृ. 10
20. वही, पृ. 18
21. वही, पृ. 15
22. वही, पृ. 16
23. वही, पृ. 22
24. वही, पृ. 31
25. वही, पृ. 39
26. वही, पृ. 41
27. वही, पृ. 48
28. शुक्ल परशुराम, लोक संस्कृतिः अवधारणा एवं तत्व, पृ. 16
29. वही, पृ. 49
30. वही, पृ. 55
31. आराधना, मनोरमा सोढ़ानी, पृ. 15
32. दुबे, नरेशचन्द्र, ब्याव का लोकगीत, संकलन, पृ. 41
33. शुक्ल परशुराम, लोक संस्कृतिः अवधारणा एवं तत्व, पृ. 16
34. आराधना, मनोरमा सोढ़ानी, पृ. 128, 131

प्राथमिक शिक्षा का मौलिक अधिकार : विधि, उपादेयता एवं प्रभाव

डॉ. अमित कुमार सिंह*

बीज शब्द : प्राथमिक शिक्षा, अधिकार, अनिवार्य शिक्षा, बालक, अनुसूचित जाति, निःशुल्क शिक्षा।

प्रस्तावना :

समय और राष्ट्र का विकास उसके मानव संसाधन पर निर्भर करता है। यह मानव संसाधन बहुपक्षीय तरीके से समाज और राष्ट्र को विकसित व सशक्त होने में मदद करता हैं। शिक्षा मानवीय संसाधन को मूल्यवान व अर्थवान बनाने में सहायता देती है, शिक्षा के अभाव में समाज बर्बर रह जाता है और राष्ट्र अन्ततः अपने अस्तित्व पहचान को खो देता है। राज्य व समाज का विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है और इसमें राज्य व समाज का हर नागरिक व व्यक्ति हिस्सेदारी करता है। हम किसी ऐसे विकसित राष्ट्र की कल्पना नहीं कर सकते जो नागरिकों को विकसित किये बिना विकसित हो जाये।

देश के विकास में जितना महत्व वर्तमान व्यस्क जनसंख्या का है उतना ही महत्व बालकों और युवाओं का भी है। इस उद्देश्य के अन्तर्गत ही भारतीय नीति निर्माताओं ने भारत में निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था को लागू किया। यह व्यवस्था किशोरावस्था के पूर्व प्राप्त की जाने वाली प्राथमिक शिक्षा के लिए बनाई गई हैं। भारत सरकार द्वारा इसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिये संविधान संशोधन के माध्यम से चौदह वर्ष तक के बालकों के लिये शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया। प्रस्तुत शोध–पत्र में इस कानून के स्वरूप, उद्देश्य, लक्ष्य और व्यावहारिक क्रियान्वयन पर आलोचनात्मक विचार किया गया है।

चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों विशेषतः कमजोर वर्ग के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दिलाने वाला शिक्षा का अधिकार कानून 2009 को लागू हुए सोलह वर्ष पूरे हो गये हैं। अब तक देश के कमजोर वर्ग के करोड़ों बच्चों को गरीबी की वजह से शिक्षा प्राप्त हो पाती थी, लेकिन इस कानून के लागू हो जाने के ऐसी आशा की जा सकती है, कि अब प्रत्येक बच्चे को सुगमता से शिक्षा प्राप्त हो जायेगी।

भारत में शिक्षा के अधिकार की संघर्ष यात्रा पर यदि हम नजर डालें तो पायेंगे कि 1882 में ज्योतिबाराव फुले ने शिक्षा के अधिकार का प्रयास भारतीय शिक्षा आयोग 'हंटर कमीशन' के सामने किया जो असफल रहा। फिर हम देखते हैं कि गोपाल कृष्ण गोखले ने 19 मार्च 1910 को केन्द्रीय धारा में सभा अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश किया था। 16 मार्च 1911 में गोखले ने इस प्रस्ताव को केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के साथ पेश किया, परन्तु भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि ने सरकार के पक्ष में मत दिया और यह विधेयक के विरुद्ध 38 मतों से गिर गया। लेकिन शिक्षा अधिकार संघर्ष वही नहीं रुका, बल्कि लम्बी लड़ाई के बाद 2002 में 86वें संविधान संशोधन 21ए के बाद 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा मौलिक अधिकार के रूप में शामिल हुआ। आगे चलकर 2009 में इस कानून को संसद के दोनों सदनों ने पारित किया और बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 बना। सन् 2010 की 1 अप्रैल से इसे पूरे देश में 3 वर्षों के दौरान यानी 31 मार्च 2013 तक पूरी तरह से लागू करने की अधिसूचना जारी हुयी।

शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के अन्तर्गत बच्चों के अधिकार निम्नलिखित हैं–

- छह से चौदह वर्ष तक प्रत्येक बच्चे को निःशुल्क (बच्चों से किसी प्रकार का चंदा अथवा शुल्क नहीं लिया जायेगा ताकि उनकी स्कूली शिक्षा में बाधा न पड़े) एवं अनिवार्य शिक्षा (राज्य अथवा स्थानीय निकाय जो 40 की संख्या में बच्चों को एक किलोमीटर की परिधि में प्राथमिक और तीन किलोमीटर की परिधि में प्रारम्भिक विद्यालय की स्थापना की जायेगी) प्राप्त करने का अधिकार होगा।
- माता–पिता तथा अभिभावकों का यह मौलिक कर्तव्य है कि वह बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में पूर्ण सहयोग करें तथा उन्हें स्कूल भेजें।
- कमजोर वर्गों के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटों का आरक्षण निजी स्कूलों के लिए भी अनिवार्य कर दिया गया है।

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर, दिग्विजयनाथ एल0टी0 प्रशिक्षण महाविद्यालय, सिविल लाइन्स, गोरखपुर उ0प्र–273009

- बच्चों को किसी भी प्रकार की प्रवेश परीक्षा, साक्षात्कार या प्रवेश शुल्क नहीं देना होगा।
- कक्षा 1 से 8 तक किसी भी बच्चे को अनुत्तीर्ण नहीं किया जायेगा।
- शिक्षण का कार्य प्रशिक्षित शिक्षक ही करेंगे तथा अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जायेगा।
- इस अधिनियम के प्रावधानों को अमल में लाने की जिम्मेदारी केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों की है तथा इसके लिए होने वाला धन खर्च भी इनकी समवर्ती जिम्मेदारी रहेगी।
- अधिनियम के प्रावधान के अनुसार केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) को शैक्षिक पाठ्यक्रम मूल्यांकन प्रक्रिया के लिए अधिकृत किया है। इसका मुख्य काम प्राथमिक शिक्षा तथा इसके लिए आवश्यक पाठ्यक्रम का राष्ट्रीय स्तर पर विकास करना है।

कानून लागू करने में प्रमुख चुनौतियाँ

इस कानून को लागू करने में कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जैसे इस कानून को लागू करने में सबसे बड़ी चुनौती कोष की है, क्योंकि पहले वर्ष में कानून के क्रियान्वयन के दौरान 70 अरब रुपये की कमी की आशंका जताई गयी थी। इसी तरह देश में अभी कम से कम 5 लाख शिक्षकों की आवश्यकता है, इसके बिना कानून की सफलता सम्भव हीं दिखती। अभी भी देश में अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या कुल अध्यापकों की संख्या के 10–40 फीसदी है। इन अध्यापकों को नये सिरे से प्रशिक्षित करना होगा। लाखों स्कूलों में अभी भी आधारभूत सुविधाएं पर्याप्त नहीं हैं। इस बात की कोई योजना नहीं है कि सरकार स्कूलों से दूर हो चुके 81 लाख बच्चों को वापस कक्षाओं में भेजने के लिए कैसे कदम उठाएगी।

इस अधिनियम को यथार्थ रूप देने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने उ०प्र० निःशुल्क एवं बाल शिक्षा का अधिकार नियमावली, 2011 अधिसूचित की है। इस नियमावली के कई प्रावधानों को लागू करने में बेसिक शिक्षा विभाग व्यवहारिक कठिनाई महसूस कर रहा है।

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल ने कहा कि सभी निजी और अल्पसंख्यक स्कूलों को वंचित वर्ग के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटें आरक्षित करनी होगी और यदि कोई भी स्कूल शिक्षा का अधिकार कानून का उल्लंघन करता है तो उसे दंड दिया जायेगा। यह व्यवहारिक रूप से एक असाध्य कार्य सिद्ध हो रहा है।

'चाइल्ड राइट एण्ड यू' और पश्चिम बंगाल शिक्षा नेटवर्क द्वारा कराए गये सर्वेक्षण के मुताबिक बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून के लागू होने के कई सालों बाद भी पश्चिम बंगाल के ग्रामीण इलाकों में इसका क्रियान्वयन चुनौती बना हुआ है। रिपोर्ट में कहा गया है कि नौ जिलों में 1210 बच्चों ने शिक्षा पूरी करने के पहले ही स्कूल छोड़ दिया। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार देश में 6–14 वर्ष के 19 करोड़ बच्चे आज भी स्कूल नहीं जा पा रहे हैं। बिहार में स्कूल जाने वाले 50 प्रतिशत बच्चे स्कूल से दूर हैं। छत्तीसगढ़, उड़ीसा, अरुणांचल प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में भी यह संख्या बहुत अधिक है।

भारत में पढ़ाई के बीच में स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों की अधिकतम संख्या भी एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के 2005–06 के आँकड़ों के अनुसार कक्षा एक से कक्षा आठ तक सभी वर्गों के विद्यार्थियों द्वारा विद्यालय छोड़ने का प्रतिशत 48.80 हैं, वहीं अनुसूचित जाति व जनजाति के बच्चों के लिए क्रमशः 55.17 प्रतिशत तथा 62.87 प्रतिशत तक है।

उपरोक्त सभी आँकड़ों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल कानून बना देने मात्र से प्राथमिक शिक्षा की दशा और दिशा नहीं बदली जा सकती है। जब तक इस कानून को लागू करने में आने वाली कठिनाईयों एवं समस्याओं का समाधान करने के लिए व शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए कोई योजना तैयार कर उसे क्रियान्वित नहीं किया जाएगा, तब तक इस कानून को सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकेगा। आजादी के आठ दशक बीत जाने के बाद शिक्षा के क्षेत्र में जिस प्रकार की गति की उम्मीद थी, वह पूरी नहीं हुई। खासकर प्राथमिक शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं मानी जा सकती, क्योंकि यह न केवल शिक्षकों की कमी से जूझ रही है, बल्कि गुणवत्ता की कसौटी पर भी प्राथमिक शिक्षा पिछड़ी नजर आती है। इसके कारणों की जद्द में जाएं तो राजनीतिक इच्छा शक्ति के साथ ही सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमियों की अहम् भूमिका नजर आयेगी। 2015 तक सबके लिए शिक्षा (इएफए) का नाम बदलकर फास्ट ट्रैक ऑफ इनिसिएटिव (एफटीआई) रखा गया है, क्योंकि यदि हम चाहते हैं कि तय (निर्धारित) समय–सीमा के लक्ष्य प्राप्त कर सकें तो हमें अपनी रणनीतियों, योजनाओं, कार्य योजनाओं आदि में परिवर्तन करने होंगे।

संदर्भ :–

1. गुप्ता एस०पी० तथा गुप्ता, अलका (2004) : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. शर्मा, आर०ए० तथा शर्मा (2009) : भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. श्री निवास, एम०एम० : भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. सारस्वत, मालती शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा।

पत्र/पत्रिका :

1. वार्षिक रिपोर्ट, 2011–12, भारत सरकार
2. कुरुक्षेत्र, मई 2011
3. कुरुक्षेत्र, सितम्बर 2012
4. योजना, भारत 2012
5. वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ, भारत, 2012
6. प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार